योग
एक वरदान

लेखक
डॉ० द्वारका प्रसाद


सुबोध पब्लिकेशन्स

लेखक की अन्य रचनाएं

उपन्यास

- ☐ घेरे के बाहर
- ☐ पहिए
- ☐ अकुश
- ☐ रजना
- ☐ मम्मी बिगड़ेगी
- ☐ बेड़िया
- ☐ प्यार
- ☐ किसकी प्रिया
- ☐ जरूरत
- ☐ मुक्ति
- ☐ सुनील एक असफल आदमी
- ☐ मौत और जिन्दगी
- ☐ गुनाह बेलज्जत
- ☐ हत्या
- ☐ हथौड़े और चोट
- ☐ संगीता के मामा
- ☐ रति
- ☐ भटका साथी
- ☐ स्वयसेवक
- ☐ सद छाया

मनोविज्ञान तथा विविध

मानव मनोविज्ञान मानव मन विवाह की आवश्यकता ही क्या है? पति-पत्नी मे भी प्रेम सभव है अपने बच्चे से कैसे कहूं? बच्चे कहा से आते हैं? बालक-बालिकाओं की मनोवैज्ञानिक समस्याए यौन विज्ञान काम मनोविज्ञान और यौन व्याधिया अधिक बच्चे क्यों?

लेखक का पता

डॉ० द्वारका प्रसाद, ५ महात्मा गाधी रोड, राची (विहार)

मूल्य २५ ००

प्रकाशक सुबोध पब्लिकेशन्स २/१ बी, असारी रोड नई दिल्ली ११०००२ / सस्करण १९९० / मुद्रक रविन्द्र ऑफसेट, शाहदरा दिल्ली ११००३२

उन सारे लोगों के लिए भी
जिन्हें
योग और सच्चे ज्ञान मे
रुचि है ।

विषय-सूची

भाग १

भाग २

भूमिका

यू तो मेरा भारतीय दर्शनो से परिचय सन् ३७-३९ के आस-पास ही हुआ था जब मैं पटना कॉलेज मे बी० ए० का विद्यार्थी था। लेकिन कलकत्ता विश्वविद्यालय के यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑव साइन्स में मनोविज्ञान की स्नातकोत्तर पढाई करते समय (उन दिनों हिन्दुस्तान भर मे एकमात्र कलकत्ता विश्वविद्यालय मे ही मनोविज्ञान की एम० ए०, एम० एस-सी० की पढाई होती थी) भारतीय मनोविज्ञान के अध्ययन के दौरान योगदर्शन को कुछ नजदीक से जान सका था। यह सन् ३९-४१ की बात है। सन् ४६ मे मैं अपनी फिल्म निर्माण कपनी, बिहार मूवीटोन लिमिटेड, के लिए फिल्म निर्माण के सिलसिले मे बबई गया था और सन ४८ के आरभ तक मैं वहा फिल्म बनाने मे लगा रहा। यह काम कितना तनाव पैदा करने वाला है, यह वही समझ सकता है जिसने इसे कुछ करीब से देखा है। यू तो हर तरह की परिस्थिति मे खुश रहना मेरा बचपन से ही स्वभाव रहा है फिर भी उन दिनो मुझे कुछ मानसिक तनाव और कुछ शारीरिक थकावट हो जाया करती थी। तभी मेरा ध्यान योग की ओर गया और मैंने आसन और ध्यान का अभ्यास आरभ किया।

इस बीच मेरी रुचि योग की ओर काफी बढ गई थी और मैंने इस सबध के साहित्य का गहराई से अध्ययन करना आरभ कर दिया था।

तब से आजतक लगभग तैंतीस चौंतीस वर्षो के अपने राजयोग और हठयोग की सैंकड़ों पुस्तको के अध्ययन, अनेक योगियो से विचार विमर्श और स्वय के योगाभ्यास, मानसचिकित्सा के दौरान अनेक रोगियो पर आसन और ध्यान के प्रयोग, मनन और चिन्तन से इस विषय मे मैंने जो परिणाम निकाले हैं उनका निचोड मैंने इस पुस्तक मे प्रस्तुत किया है। योग के सबध मे मैंने जो सिद्धान्त दिए हैं वे सर्वथा नवीन हैं और आजतक मैंने किसी विद्वान् को इस विषय की पारम्परिक मान्यताओं से हटकर कुछ

भी सोचते-लिखते नहा देखा। मेरा दृष्टिकोण पूरी तरह वैज्ञानिक तक और अपने अनुभव पर आधारित है। यह आवश्यक नहीं कि आप मेरे तर्कों और परिणामों से सहमत हों, फिर भी, मेरा विश्वास है, मेरी यह पुस्तक आपको अपनी मान्यताओं के संबंध में फिर से विचार करने को बाध्य करेगी।

एक बात और। पाठकों में कुछ ऐसे व्यक्ति भी हो सकते हैं, जिनकी रुचि योग के सिद्धान्त पक्ष में बहुत नहीं हो। वे चाहें तो, इसका प्रथम भाग (सिद्धान्त पक्ष) छोडकर इसके दूसरे भाग (व्यवहार पक्ष) को ही पढ़कर लाभ उठावें।

—द्वारका प्रसाद

५, गांधी मार्ग,
रांची, ८३४००१

३१ जुलाई, १९८१

भाग एक

सिद्धान्त-पक्ष

१

योग से हम क्या समझते हैं?

यह सन् ५६ या ५७ ई० की बात है। उन दिनों में बम्बई के टाइम्स ऑव इण्डिया प्रेस से वर्क्स स्टडी डिपार्टमेण्ट के प्रधान के रूप में संबद्ध था। इलस्ट्रेटेड वीकली के मुख्य संपादक सी० आर० मैन्डी ने अभी हाल ही अवकाश ग्रहण किया था और मिस्टर रामण मुख्य सम्पादक का काम कर रहे थे।

एक दिन मि० रामण मेरे कमरे में आए और सामने की कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने कहा—डा० प्रसाद, आप वरसोवा में रहते हैं न?

मैंने कहा—जी हां।

—सात बंगला रोड में?

—हां।

—तो आप शायद सरस्वती अम्मा को जानते होंगे?

मैंने कहा—जरूर जानता हू। मैं रूस काटेज मे रहता हू। मेरे बाईं ओर राजाविला है, उसी के ऊपरी तल्ले में सरस्वती अम्मा रहती हैं।

साथ ही मैंने कहा—क्या बात है ? आप सरस्वती अम्मा को क्यो पूछ रहे हैं ? क्या आप उन्हें जानते हैं ?

रामण ने कहा—मैं बहुत थोडा उन्हें जानता हू, लेकिन उनके बारे में बहुत कुछ सुना है। चूकि आप उनके पडोसी हैं इसलिए आपसे जानना चाहूगा कि उनके बारे मे जो कुछ कहा जा रहा है वह कहा तक सच है।

मेरे मन मे एक विचार दौड गया और मैंने छूटते ही कहा—मि० रामण, क्या आप सरस्वती अम्मा पर कोई लेख वीकली मे छापने जा रहे हैं ?

—नही, अभी तो नही छाप रहे हैं, रामण ने उत्तर दिया, लेकिन छाप भी सकते हैं।

मैंने कहा—मि० रामण, यह काम तो आप हर्गिज मत कीजिएगा। अगर आपने कभी ऐसा किया तो वीकली के लाखो पाठको के ऊपर यह आपका बहुत बडा अपकार होगा।

रामण ने इसका स्पष्ट उत्तर तो नही दिया लेकिन इतना आश्वासन अवश्य दिया कि पहले वह सरस्वती अम्मा के सबध मे मेरी राय जानना चाहेंगे, उसके बाद ही तय करेंगे कि उन पर कुछ छापेंगे या नही।

मैंने कहा—क्या कुछ खास कारण है कि आपकी दिलचस्पी सरस्वती अम्मा मे हुई ?

रामण ने उत्तर दिया—देखिए डा० प्रसाद, हर आदमी के सामने तरह-तरह की समस्याए होती हैं। मैंने सुना है कि जिस पर अम्मा प्रसन्न होती हैं उसे अपने हाथ के कुकुम मे से निकालकर मूर्तिया देती हैं जिनसे उसकी सारी समस्याए हल हो जाती हैं।

मैंने कहा—मूर्तिया कुकुम के दोने से निकाल कर देने की बात तो मैंने भी बहुत सुनी है, लेकिन दोने मे से एक-डेढ इच की मूर्ति हथेली मे निकाल कर देना कोई चमत्कार नहीं।

—एक डेढ इच की नही, दस-दस बारह-बारह इच की मूर्तिया उनकी अजली के दोने के कुकुम से निकलती हैं और कभी-कभी सैकडो की सख्या मे।

—आपने दस-बारह इच की ऐसी कोई मूर्ति देखी है ?

रामण ने कहा—यही तो मैं जानना चाहता हू कि सचाई क्या है ?

सरस्वती अम्मा मेरी पडोसी थी। उन दिनो मेरा अपना टेलीफोन ...था इसलिए कभी-कभी जरूरत पडने पर, उनके यहा

जाकर फोन किया करता था। एक मिस्टर कृष्णमूर्ति (या कृष्णन) उन का प्रधान सचिव और प्रबंधक हुआ करते थे। बहुत ही चलता पुर्जा आदमी। सरस्वती अम्मा एक साधारण, बेपढ़ी-लिखी अधेड़ उम्र की देहाती महिला थीं। भारी शरीर और बेहद सीधी-सादी। रामण के कहने के कारण मैंने अपनी पत्नी तथा बच्चों और चंद मित्रों के द्वारा उनके चमत्कारों के संबंध में निकट से जांच करवाई। पता यही चला कि सरस्वती अम्मा पूजा के अंत में कृष्ण वगैरह की मूर्तियों की बगल में खड़ी हो जाती हैं उनके हाथ में लगभग दस-बारह इंच व्यास का पत्तों का एक दोना होता है जो कुंकुम से भरा होता है। उनकी बगल में कृष्णमूर्ति (या कृष्णन) खड़े होते हैं। भक्त बारी बारी से हिंदी या अंग्रेजी में प्रश्न करते हैं। अम्मा धीरे-धीरे अपनी भाषा में (जो कोई दक्षिणी भारतीय भाषा थी, अब उस का नाम मुझे याद नहीं) कृष्णन से कुछ कहती हैं और कृष्णन भक्त से उनके प्रश्नों के उत्तर देते हैं। किसी किसी को कहा जाता है जिस पर वह विशेष प्रसन्न होती हैं, अपने कुंकुम के दोने में से निकाल कर सफेद धातु की कृष्ण या शिव या किसी और देवता की छोटी-सी मूर्ति देती हैं।

मैंने पूछा—मूर्तियां कितनी बड़ी होती हैं ?

तो उत्तर मिला—एक-डेढ़ इंच की होती होंगी, इतनी छोटी जो आसानी से हाथ में आ जाए और जैसी पांच-सात आसानी से दोने के कुंकुम में पहले से रखी जा सकें।

कुंकुम में से मूर्तियां निकालना ही सरस्वती अम्मा का सबसे बड़ा चमत्कार माना जाता था और उन दिनों बंबई महानगर में उनके इस चमत्कार की इतनी धूम मची हुई थी कि उनके भक्तों की संख्या हजारों में हो रही थी। हर शुक्रवार की शाम, जो उनकी पूजा का विशेष दिन होता था, बंबई की पैसे वाली हस्तियों, बड़े-बड़े उद्योगपतियों, व्यवसायियों, फिल्मस्टारों आदि की लम्बी लम्बी गाड़ियों की भीड़ से सान बंगला रास्ता का एक छोर से दूसरा छोर तक भर जाया करता था।

महीनों से अपने पड़ोस में उनके रहते आए, कृष्णन से अपनी जान-पहचान और उनके 'आश्रम' में रहने वालों में से कइयों को जानने, उनके यहां जाने वालों से अपने कई मित्रों और परिचितों से उनके संबंध में होती आई बातचीतों आदि के कारण हम इस नतीजे पर पहुंचे थे कि सरस्वती अम्मा की इस शोहरत के पीछे असली चमत्कार उनके प्रधान सचिव और महाप्रबंधक कृष्णमूर्ति (या कृष्णन) के व्यक्तित्व और प्रचार का था।

जिस दिन चोवजी के सम्पादक रामण से बातचीत हुई थी उसके

लगभग एक सप्ताह के बाद मैंने अपनी राय उन्हें दे दी और कहा—सरस्वती अम्मा का सारा चमत्कार मात्र 'होक्स' (धोखा) है।

हम किस तरह और क्यों इस परिणाम पर पहुंचे थे विस्तार से वह भी रामण को मैंने बता दिया।

इसके लगभग एक महीने के बाद इलेस्ट्रेटेड वीकली में दो रंगीन और एक श्वेत-श्याम पृष्ठ पर सरस्वती अम्मा पर एक बड़ा-सा लेख देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। जहां तक मुझे याद आता है—शीर्षक था—क्या आप चमत्कारों पर विश्वास करते हैं?

वीकली का वह अंक लेकर मैं रामण के कमरे में गया और कहा—रामण, आखिर आपने सरस्वती अम्मा पर लेख छाप ही दिया न? इस तरह एक 'होक्स' को इतना बड़ा प्रचार देकर आपने बहुत बुरा किया है।

रामण ने कहा—मुझे पक्का विश्वास है कि सरस्वती अम्मा चमत्कारी हैं इसलिए मैंने छापा है। इसकी दूसरी किश्त अगले अंक में जा रही है।

इस घटना के कुछ महीनों के बाद ही मैं बम्बई छोड़कर रांची आ गया। उपर्युक्त लेखों के प्रकाशन के लगभग छः महीनों के बाद ही वीकली में एक और लेख प्रकाशित हुआ जिसमें लिखा गया था कि सरस्वती अम्मा एक 'होक्स' (धोखा) है। उस समय भी वीकली के प्रधान सम्पादक थे रामण।

मैंने रामण को बधाई का एक पत्र लिख दिया था।

सरस्वती अम्मा का पूरा नाम वातयोगिनी सरस्वती अम्मा था। अब वह कहां हैं, इस संसार में हैं भी या नहीं या उनका प्रबन्धक कृष्णमूर्ति या (कृष्णन) कहां है मुझे नहीं मालूम। लेकिन ब्लिट्ज के कुछ लेखों और समाचारों से पता लगा था कि सन् १६५६-६० के लगभग सरस्वती अम्मा ने दिल्ली में जाकर काफी धूम मचाई थी।

कई दिन हुए रांची एक्सप्रेस (रांची से प्रकाशित होने वाले एक दैनिक) में एक समाचार पढ़ा कि भगवान रजनीश ने एक ऐसा चमत्कार किया है कि उसके सामने साईं बाबा और महर्षि महेश आदि सभी फीके पड़ गए हैं। यह चमत्कार यह है कि पूना स्थित रजनीश के आश्रम का एक खास पुस्तकों वाला पुस्तकालय रातों-रात आप-से-आप उठकर स्विट्जरलैण्ड चला गया और अब वह वहां काम कर रहा है।

परमहंस योगानन्द ने अपनी आत्मकथा (एक योगी की आत्मकथा) में कई ऐसे योगियों से अपनी भेंट की बात लिखी है जो एक ही समय में एक से अधिक स्थानों पर सशरीर मौजूद थे।

सामान्यतया योग से हम यही समझते हैं कि अगर किसी की योग-

साधना सफल हो जाए तो उसके अन्दर तरह-तरह के अलौकिक चमत्कार करने की शक्ति पैदा हो जाती है। मसलन वह बगैर नाव के पानी पर पैदल चल सकता है, जमीन पर बैठा हुआ हवा में ऊपर उठकर अधर में बैठा रह सकता है, आकाशमार्ग पर सदेह भ्रमण कर सकता है, जहां चाहे वहां पहुच सकता है, किसी स्थान में होते हुए वह ध्यान के द्वारा किसी भी अन्य स्थान (वह चाहे कितने ही हजार मील दूर क्यों न हो) का हर कुछ देख-सुन सकता है और वहा का हर कुछ सही-सही बता सकता है, बगैर कुछ बोले किसी को भी अपने मन की बात बता सकता है, किसीके भी मन को प्रभावित कर सकता है और उसके मन की बात जान सकता है, जो चीज चाहे अपनी इच्छा शक्ति के द्वारा तुरन्त प्रकट कर दे सकता है आदि।

इधर पिछले कुछ वर्षों से जब योग अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों में जनप्रिय होने लगा तो हम भारतीयों का ध्यान भी योग की ओर गया। पहले हम योग को साधु-सन्यासियों और पूर्णत: गृहत्यागी योगियों की वस्तु समझते थे। लेकिन योरोपीय देशों की इसकी लोकप्रियता ने हमें यह सोचने पर मजबूर किया कि शायद योग सच ही गृहस्थियों के भी काम की चीज हो। तब धड़ाधड़ योग पर भारतीय भाषाओं में भी पुस्तकें निकलने लगीं। अनेक हिन्दुस्तानी योगियों ने अंग्रेजी में भी पुस्तकें लिखीं छपवाईं और चूंकि उनकी रुचि भी भारत से अधिक विदेशों के बाजार में थी इसलिए, जो भी जा सका विदेशों में जाकर आश्रम खोल आया। आज योग एक अच्छा बड़ा व्यवसाय है जिसमें काफी लोग लगे हुए हैं।

पश्चिम से होकर जो योग में हमारी दिलचस्पी आई उसमे हमें पता चला कि योग आसनों का विज्ञान है जिनके द्वारा आदमी अच्छा स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकता है। अधिकांश लोग योग का अर्थ सिर्फ योगासन समझते हैं।

मानसिक शान्ति वाली बात पर याद आया कि एक महर्षि महेश योगी हैं जो किसी जमाने मे जबलपुर में किसी कॉलेज में प्रोफेसर हुआ करते थे। (पहले के आचार्य और अबके भगवान रजनीश भी मध्य प्रदेश में ही कहीं लेक्चरर हुआ करते थे।) उनके नाम से ही जाहिर है कि एक ओर तो वह महा ऋषि हैं और दूसरी ओर योगी। महर्षि महेश योगी के योग का आधार-स्तम्भ भावातीत समाधि (जिसे अंग्रेजी में ट्रैन्सेन्डेन्टल मेडिटेशन, संक्षेप में टी० एम० कहते हैं) है। महर्षि महेश योगी का दावा है कि अपनी भावातीत समाधि की विधि से वह किसी को भी चिन्तामुक्त करके बगैर किसी तरह की औषधि के मन की शान्ति और नींद दे सकते हैं। आज की

औद्योगिक सभ्यता मे, जहा पारस्परिक स्पर्धा का अन्त नही और अधिकाश सम्पन्न लोग तरह-तरह के तनावो से ग्रस्त हैं, किसी भी तरह का ध्यान तनावमुक्ति, शान्ति और गोलियो के बगैर नीद देगा ही इसमे सन्देह नही। गोलीविहीन नीद देते-देते महर्षि महेश आज इतने लोकप्रिय और सफल हैं कि स्विटजरलैण्ड मे उनका बहुत बडा फाउण्डेशन है और हर साल करोडो का व्यवसाय वह कर रहे हैं। सारे ससार मे उनकी शाखाए फैली हुई हैं।

भगवान रजनीश तन्त्रयोग की वकालत करते हैं सम्भोग के द्वारा लोगो को समाधि दिलाते हैं। पूना मे उनका भी करोडो का आश्रम है जिस की सालाना आमदनी पचासो लाख रुपयो से ऊपर है। स्वाभाविक है कि उनके आश्रम मे आने वाले शिष्य शिष्याओ का बडा भाग अमेरिका और योरप का है।

योग से हम क्या समझते हैं की बात करते हुए एक और सस्था का नाम याद आता है—वह है ब्रह्मकुमारियो का ईश्वरीय विश्वविद्यालय। प्रजापति ब्रह्मा (यानी सस्था के सस्थापक स्वर्गीय दादा लेखराज, जो शिव के अवतार माने जाते थे) ने जो मार्ग बताया है उस पर चलकर आदमी मुक्ति पा सकता है। इसके अधिकाश अनुयायी स्त्रिया हैं और ये ब्रह्मकुमारिया मुख्यत उन्ही के बीच प्रचार करती है। उन्हे कहा जाता है कि घर-गृहस्थी का पूर्णरूपेण त्याग करके उनके यहा दीक्षा लेने से ही भवबाधा कट सकती है जिससे अन्त मे सभी भक्त गोपिकाए बन जाते (जाती) हैं और प्रजापति ब्रह्मा कृष्ण के रूप मे उनके साथ निरन्तर रास रचाते हैं। यह ब्रह्माकुमारियो और ओमंडली का योग है।

आज दिल्ली और भारत के अन्य राज्यो की अधिकतर राजधानियो मे अनेक तान्त्रिक और योगियों का बोलबाला है। बडे बडे मन्त्री, राजनेता उद्योगपति और व्यवसायी इनके आगे पीछे घूमते है। यहा तक कि मन्त्रिमण्डलो मे उलट-फेर बडे-बडे राजनीतिक और राष्ट्रव्यापी फसले आदि तक तान्त्रिको और योगियो के कहने पर होते है। यह आम चर्चा का विषय है। इससे जाहिर है कि ऐसे लोग योग को भविष्य वर्तमान और ग्रहो आदि को प्रभावित कर मनवाछित काम कराने का साधन भी समझते हैं।

ऊपर कई विख्यात योगियो तथा सस्थाओ की चर्चा हमने सिर्फ इस उद्देश्य से की है कि हम जान सकें कि जनसामान्य आमतौर पर योग से क्या समझता है। □

तो, योग क्या है ?

योग शब्द 'युज्' धातु से बना है। युज् का अर्थ है जोडना। इसका अर्थ संयोग या मिलन भी होता है।

प्रश्न होता है, योग किसका किससे मिलन कराता है ? किसे किससे जोडता है ?

इसके तरह-तरह के उत्तर हैं। कोई कहता है कि अपनी अन्तरात्मा के साथ एकाकार होने के अनुभव को योग कहते हैं। यह एकता जड और चेतन के द्वैत भाव को परम तत्व मे मिला देने से मिलती है।

अन्य शब्दो मे किसीने इसी को इस तरह कहा है—शरीर, मन और आत्मा की समग्र शक्तियो को परमात्मा मे संयोजित करना योग है।

हिन्दुओ के छ दर्शनो मे एक योगदर्शन है। इसके प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं। पतंजलि अपने योगसूत्र मे लिखते हैं—चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है। चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ है मन मे निरंतर चलने वाले विचार, आवेश, भावनाओं आदि को इस तरह नियंत्रित कर लेना कि वे आदमी के पूर्णत वश मे हो जाए। मन का स्वभाव चंचल है। वह कभी स्थिर नहीं रहता, यहा तक कि गहरी नींद में भी नही। जैसे किसी अशान्त नदी में भवर उठते रहते हैं वैसे ही मन में आवेशों और विचारो के भवर उठते रहते हैं। योग वह क्रिया है जिसके द्वारा इन भवरो को हमेशा के लिए शांत कर दिया जा सकता है।

महर्षि वेदव्यास ने गीता मे श्री कृष्ण के माध्यम से योग के संबध मे ये विचार व्यक्त किए हैं—जब मन, बुद्धि और अहकार वश मे होते हैं और वे चचल इच्छाओ से रहित होते हैं, जिससे वे आत्मस्थित रह सकें, तब पुरुष 'युक्त' होता है। जहा वायु नहीं बहती है वहा दीपक की लौ नही कांपती है। वही स्थिति योगी की है जो अपनी आत्मा मे लीन होकर, मन, बुद्धि और अहकार को वश मे करता है। योगाभ्यास के द्वारा जब मन,

बुद्धि और अहकार की चचलता को शान्त एवम् स्थिर कर दिया जाता है तब योगी शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा का साक्षात् करता हुआ अपने आपमें सतुष्ट होता है। ऐसी स्थिति में वह इन्द्रियातीत, बुद्धिग्राह्य जो अनन्त आनन्द है उसे प्राप्त करता है। वह इससे विचलित नहीं होता। इस निधि से बढकर और कुछ नहीं। जिसने इसे प्राप्त किया है उसे महान् से महान् दु ख भी विचलित नहीं कर सकेगा। योग का सही अर्थ यही है—दुःख से पूर्ण मुक्ति।

योग के सबध में कठोपनिषद् कहती है—जब चेतना निश्चेष्ट हो जाती है, मन शान्त हो जाता है, बुद्धि स्थिर हो जाती है तब ज्ञानी उसे सर्वोच्च पद प्राप्त हुआ मानते हैं। चेतना और मन के इस दृढ निग्रह को ही योग कहते हैं। जो इसे प्राप्त करता है वही बन्धनमुक्त है।

व्यास ने गीता में अर्जुन से प्रश्न करवाया है कि कृष्ण कहते हैं कि ब्रह्म (अर्थात् विश्वात्मा), जो सदा एक है, से तादात्म्य ही योग है, लेकिन मन तो इतना चचल है उसे वश में करना वायु को वश मे करने के समान है। फिर ऐसा करना कैसे सभव है ?

इसपर कृष्ण कहते हैं—निस्सन्देह मन चचल है और इसे वश में करना अत्यन्त कठिन है। फिर भी निरन्तर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है। जिसने अपने आपको सयमित नहीं किया है उसके लिए योग को प्राप्त कर पाना बहुत कठिन है। परन्तु आत्मसयमी व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है यदि वह श्रमपूर्वक साधना करता है और अपने आपको उपयुक्त साधनों से नियन्त्रित करता है।

इस तरह हम देखते हैं कि योग के उद्देश्यों में चार बातें मुख्य हैं—आत्मा को परमात्मा में मिला देना, शाश्वत आनन्द की प्राप्ति, दुःख से मुक्ति और मोक्ष।

अथवा अन्तिम रूप में योग का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। आप मोक्ष को कई अर्थों में ले सकते हैं—

□ हर प्रकार के सासारिक बन्धनों से हमेशा के लिए मुक्ति
□ दुःख से मुक्ति
□ आवागमन से बार-बार जन्म-मृत्यु से, छुटकारा
□ आत्मा का परमात्मा में विलय।

अगर योग को मोटे और व्यापक रूप मे लें तो भक्तियोग, कर्मयोग ज्ञानयोग आदि को भी इसमें सम्मिलित कर सकते हैं। लेकिन हम यहा पर योग को गीता तथा पतजलि के योग के अर्थ में ही लेंगे।

पतजलि के अनुसार योग के आठ अग हैं। ये हैं—

१ यम (नैतिक कर्तव्य)
२ नियम (अनुशासन)
३ आसन (शरीर की स्थिति)
४ प्राणायाम (श्वासप्रश्वास पर नियन्त्रण)
५ प्रत्याहार (बाहरी वस्तुओ और इन्द्रियजनित आनन्दानुभूति से मुक्ति)
६ धारणा (किसी एक ही विषय पर मन की एकाग्रता)
७ ध्यान (धारणा के विषय को चेतना के केन्द्र मे रखकर उसपर चिन्तन)
८ समाधि (गहरे ध्यान के द्वारा प्राप्त दिव्य चेतना की वह अवस्था जब आत्मा का परमात्मा मे विलय हो जाता है)

१ यम पाच है—अहिंसा (किसी की हानि नहीं करना), सत्य, अस्तेय (चोरी नही करना), ब्रह्मचर्य (अपनी इन्द्रियो पर नियन्त्रण), और अपरिग्रह (लोभ पर काबू रखकर व्यर्थ सग्रह न करना)।

चूकि व्यक्ति समाज मे पैदा होकर सारी उम्र उसी के अदर, उसी के साथ रहता है, इसलिए उसे ऐसे नियमो का पालन करना पडता है ताकि वह भी सुखी रह सके और अन्य लोगो को भी दुख न हो। अगर आदमी पैदा होते ही जगलो मे चला जाए जिन्दगी भर अकेला रहे तो उसे किसी तरह के नैतिक मूल्यो और कर्तव्यो की आवश्यकता नही रहे। अकेला आदमी हिंसा करेगा भी किसकी ? झूठ बोलेगा किससे ? चोरी करेगा किसकी ? अपनी इन्द्रियो पर काबू नहीं रखे तो भी किसी का नुकसान नही और अगर कोई और वहा होगा ही नही तो धन सचय करेगा कहा से ? लोभ करेगा किसकी वस्तुओ पर ?

उपर्युक्त पाच यमो के पालन से व्यक्ति समाज मे रहकर औरो को भी सुखी रख सकता है स्वय भी सुखी रह सकता है। इसलिए ही यह विधान बनाया गया है।

२ नियम भी पतजलि के अनुसार, पाच हैं—
१ शौच अर्थात शरीर और मन की शुद्धता
२ सतोष
३ तप अर्थात् साध्य की प्राप्ति के लिए कष्ट सहते हुए भी निरन्तर साधना करते जाना
४ स्वाध्याय अर्थात् सद्ग्रन्थो का अध्ययन
५ ईश्वर प्रणिधान अर्थात् अपने सारे प्रयासो और कर्मों को ईश्वर को अर्पित कर देना।

३ पतजलि के अष्टाग योग के तीसरे अग आसन का अर्थ शरीर की स्थिति है। पतजलि ने आसन के सम्बन्ध में सिर्फ एक सूत्र दिया है— स्थिरम् सुखमासनम् यानी शरीर को ऐसी स्थिति में रखना कि व्यक्ति काफी देर तक सुखपूर्वक उसी मे स्थिर रह सके। इस तरह, जिस योग की कल्पना पतजलि ने की है उसमे, उनके उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पद्मासन, सुखासन अथवा सिद्धासन काफी है। (इनका वर्णन हम आगे चलकर यथास्थान करेंगे)।

पतजलि ने अपने योग का कोई विशेष नाम तो नही दिया है, लेकिन उसका नाम 'राजयोग' पड गया है। राजयोग का अर्थ होता है किसी एक आसन(पद्मासन, सुखासन अथवा सिद्धासन)म स्थिर होकर निरन्तर ध्यान करते हुए समाधि की अवस्था मे पहुचकर अतत मोक्ष प्राप्त कर लेना।

लेकिन आसन अलग से ही एक बडा विज्ञान बन गया। हठयोग प्रदीपिका अथवा घेरडसहिता आदि ने आसनो की सख्या काफी बढ़ा दी।

शरीर अगर स्वस्थ नही रहे तो चित्त भी शान्त नही हो सकता और न व्यक्ति ध्यान लगा सकता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम की आवश्यकता आदिकाल से ही अनुभव होती आई है। व्यायाम में शरीर को हरकत देकर उसे तन्दुरुस्त रखने की चेष्टा होती है।

भारतीय शरीरविज्ञानियो ने कभी न-कभी यह जाना कि शरीर को हिला-डुलाकर, उसे तीव्र गति से हरकत देकर तो स्वस्थ रखा ही जा सकता है, उसे विशेष-विशेष प्रकार की स्थितियो म कुछ-कुछ देर तक स्थिर रखने से उसे और अधिक स्वस्थ रखा जा सकता है।

यह आविष्कार ही योगासनो का जनक हुआ। शरीर के विभिन्न अगो के सकोचन और प्रसारण (इसे हम आगे चलकर विस्तार से समझाएगे) के द्वारा उन्हें पुष्ट करने के लिए विभिन्न आसनो की सृष्टि हुई। इस तरह शरीर के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले सभावित आसनो की सख्या सैकडो हुई। काट-छाट करते कुछ योगियो ने इनकी सख्या चौरासी तय की। (यह चौरासी की सख्या हिन्दू मस्तिष्क मे कसे जम गई इसकी व्याख्या अभी तक मेरे देखने मे नही आई हिन्दुओ ने भी योनियो की सख्या चौरासी लाख मानी है और उनका कहना है कि मनुष्य इन सारी योनियो मे जन्म ग्रहण करने के बाद ही मनुष्य योनि पाता है।)

आज योगविज्ञानी अपने-अपने अनुभव के अनुसार आसनो की सख्या तय करते हैं जो बीस से लेकर पचास-पचपन तक देखने मे आती है।

आसनविज्ञान का प्रचलित नाम हठयोग है। गुरु गोरक्षनाथ ने

(गोरखनाथ) हठयोग के प्रचार में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, ऐसा कहा जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि योग के दो भाग हैं—राजयोग जो प्रधानतया ध्यान का योग है, चित्तवृत्ति निरोध का योग है, मन में शांति लाकर, उसकी चंचलता को समाप्त कर आध्यात्मिक अनुभव और अंततः आत्मा को विश्वात्मा में विलीन कर देने का योग है, और हठयोग जो शरीर को श्रेष्ठतम स्वास्थ्य प्रदान करने का योग है। हठयोग का भी अंतिम उद्देश्य, योगियों के अनुसार, आध्यात्मिक अनुभव और मोक्ष ही माना जाता है।

प्राणायाम को हम हठयोग का ही भाग मानेंगे। कहते हैं सारा विश्व प्राण नामक ऊर्जा से व्याप्त है। हम इस ऊर्जा को अपने अन्दर श्वास प्रश्वास की क्रियाओं द्वारा प्राप्त करते हैं। अनुभव बतलाता है कि अगर हम अपनी श्वास प्रश्वास प्रणाली पर नियंत्रण कर लें तो एक ओर तो हम सुन्दर स्वास्थ्य लाभ करते हैं, दूसरी ओर मन की चंचलता को नष्ट कर अपने आपको गहनतम समाधि तक ले जाने के योग्य बना लेते हैं। □

३

मोक्ष क्यो ?

हमने पिछले अध्याय मे कहा है कि योग का अन्तिम लक्ष्य है मोक्ष की प्राप्ति। इसे आत्मा का ब्रह्म मे, विश्वात्मा मे परमात्मा म विलय मान लीजिए, आत्मा परमात्मा का तादात्म्य कह लीजिए, आत्मा का परमपद प्राप्त कर लेना समझ लीजिए अथवा जन्म मरण से, आवागमन से, हर तरह के दु ख से पूणत मुक्ति कह लीजिए। सच पूछिए तो सारे हिन्दू दशनो तथा हिन्दू धम का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति ही है।

आदमी के लिए चार पुरुषाथ कहे गए हैं—धम, अथ, काम तथा मोक्ष। मानव जीवन मे धम अथ तथा काम की उपलब्धि के बाद, अन्तिम मंजिल के रूप मे मोक्ष का ही स्थान है।

साधारण तौर पर इस बात को कि मनुष्य का चरम लक्ष्य मोक्ष है हिन्दू स्वयसिद्ध की तरह मानते हैं और आज तक मैंने किसी को यह प्रश्न करते नही सुना कि आखिर मोक्ष क्यो ?

जबकि किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए यह पूछना स्वाभाविक होना चाहिए था कि मोक्ष क्यो ?

हम यहा इसी प्रश्न का उत्तर ढूढने का प्रयास करेंगे।

इस बात पर दो रायें नही हो सकती कि प्राणी (चाहे वह कीट पतग हो या आदमी) दु ख से बचना चाहता है और सुख प्राप्त करना चाहता है। यह उसका स्वभाव है, यह उसकी प्रवृत्ति है। इस सत्य को समझने के लिए किसी तरह के सिद्धान्त की आवश्यकता नही। यह स्वयसिद्ध है।

मनुष्य शरीर और मन (चेतना) के मिश्रण से बनता है। चेतना के बगैर शरीर व्यथ है मुर्दा है न कुछ अनुभव करने की योग्यता रखता है न कुछ कर सकने की। इसी तरह शरीर के बगैर चेतना पूरी तरह व्यथ है। ताकि दोनों सक्रिय हो सकें दोनों का एक साथ, एक दूसरे म रहना अनिवाय है।

जीवन की प्रवृत्ति साथ लेकर ही शिशु जन्म लेता है। जीने के लिए उसे ऊष्मा चाहिए, भोजन चाहिए। शरीर की जो भी आवश्यकताएँ हैं, जैसे फेफडो मे हवा लेकर खून मे ऑक्सीजन प्राप्त करना दूध जैसी खुराक के द्वारा शरीर मे पोषण प्राप्त करना आदि के पूरी होने पर बच्चे को सुख की अनुभूति होती है। आवश्यकताओ की अपूर्ति से दु ख की अनुभूति होती है। उन सारी चीजो से भी दु ख की अनुभूति होती है जिनसे उसके शरीर को हानि पहुचती हो।

अगर हम गहराई से सोचें तो पाएगे कि व्यक्ति का हर सुख उसके शरीर पर ही आधारित है, ठीक जैसे उसका हर दु ख भी शरीर पर ही आधारित है। पहली दृष्टि मे हमारी यह बात आपको शायद गलत लगेगी। लेकिन आप इसे इस तरह समझने की कोशिश करें।

आप कुछ सुखो की बात सोचने की चेष्टा करें। यह तो मामूली बात है कि प्यास लगने पर दु ख होता है, पानी पी लेने से दु ख दूर हो जाता है और सुख मिलता है। भूख लगने से दु ख होता है, खा लेने से सुख होता है। सास लेने मे कठिनाई होने से दु ख होता है, हवा मिल जाने से सुख होता है आदि।

आप कहेंगे, यह तो मैंने सिर्फ शरीर के सुख-दु ख की बात कही। ऐसे सैकडो सुख-दु खों के उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनका आधार शरीर या उसकी जीववैज्ञानिक आवश्यकताए नही होता। मसलन बच्चा मा के पास होता है तो उसे सुख होता है, मा उससे दूर होती है तो उसे दु ख होता है। हम बुरी खबर सुनकर दु खी होते है, अच्छी खबर सुनकर सुखी। हमारा प्रिय दूर होता है तो हमे दु ख होता है, पास होता है तो हमे सुख होता है। आप कहेंगे, इन जैसे उदाहरणो मे कहा शरीर आधार बन रहा है ? अथवा वहा शरीर की आवश्यकताओ की पूर्ति अथवा अपूर्ति इनमे हो रही है ?

मैंने कहा—हर सुख दु ख का आधार शरीर है। उपर्युक्त उदाहरणों मे भी आप पाएगे कि अगर आप शरीरविहीन होते तो आपको सुख-दु ख की अनुभूति नही होती और जिन घटनाओ से आपको सुख-दु ख होते हैं उसके सभी कारण इसलिए बनते हैं कि वे भी शरीर से लिपटे हुए हैं, जैसे मा का शरीर बच्चे के शरीर के पास होने न-होने से सुख-दु ख होता है। सुख या दु ख देने वाली हर खबर किसी-न किसी ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध मे होती है जो इसलिए है कि उसे शरीर है। प्रिय से मिलन या बिछुडन एक शरीर का पास या दूर होना ही है।

आप कल्पना करें कि मा, या वह जिसके सम्बन्ध में अच्छी बुरी-खबर

सुनाई पडी है या आपका प्रिय शरीरविहीन है। वैसी हालत मे उनका पास या दूर होना या उन पर कुछ भी घटित होना सर्वथा असम्भव है। सब इसीलिए होता है कि सभी शरीरधारी हैं और इसलिए जीवित हैं कि उनके साथ चेतना भी है।

आप साहित्य कला, प्राकृतिक वस्तुओ, दृश्यो आदि के द्वारा प्राप्त होने वाले सुख-दु खो की बात कहेगे तो उनमे भी यही बात पाएगे। इन सबके आधार पदार्थ हैं भौतिक तत्त्व हैं। फिर आप भी इनका इसलिए ही रस ले सकते हैं कि आपको ज्ञानेन्द्रिया हैं। अगर आपका शरीर नही हो ता ज्ञानेन्द्रिया भी नही होगी। ज्ञानेन्द्रिया नही होगी तो न आपको कोई दृश्य दीखेगा, न काव्य या साहित्य या सगीत का ज्ञान आपको होगा। फिर उनसे प्राप्त होने वाली अनुभूतियो का अस्तित्व ही कहा होगा ?

आप किसी भी ऐसे सुख या दु ख की कल्पना करने की कोशिश कीजिए जिसमे शरीर की आवश्यकता नही हो। आप ऐसा नही कर सकते।

तब इतनी बात अवश्य है कि हर सुख या दु ख का आधार शरीर ही है, यह तो ठीक है लेकिन सुख या दु ख का अनुभव करने वाला तो चेतना है। मन है। किसी भी अग मे छुरी घुसाने से दर्द होता है। लेकिन अगर व्यक्ति बेहोश हो तो चाहे उसका एक एक अग काट दिया जाए उसे दर्द की अनुभूति नही होगी। या आपकी बहुत दिनो से बिछुडी हुई प्रिया एकाएक आपके पास आ जाए आपके शरीर को बाहो मे ले ले तो भी आपको कोई खुशी नही होगी आनन्द नही होगा सुख नही मिलेगा, अगर आप क्लोरोफार्म मे हो या गहरी नीद मे हो अपनी प्रिया को अपने पास पाकर अपने को उसकी नर्म-नर्म हसीन बाहो मे पाकर आपको सुख तभी प्राप्त होगा जब आप होश मे हो यानी आपके शरीर मे आपका मन जाग्रत हो।

आप कहेगे जब कल्पना मे, जो सिर्फ मन की वस्तु है कुछ सोचकर कुछ देखकर हम सुखी या दु खी होते हैं तब तो ऐसे सुख दु ख के बीच शरीर नही होता ? मैं कहूगा, उसमे भी शरीर पूरी तरह मौजूद रहता है। आप एक भी ऐसी कल्पना करने की कोशिश कीजिए जिसमे चाहे कोई व्यक्ति कोई दृश्य कोई घटना नही हो। हर कल्पना का आधार कही-न-कही न ठोस पदार्थ होगा ही जिसका अनुभव सिर्फ ज्ञानेन्द्रियो से किया जा सकता है।

इस तरह आप देखते हैं कि हर सम्भव सुख या दु ख का आधार भौतिक पदार्थ ही हो सकता है शरीरविहीन मन या आत्मा या अन्य कुछ नही हो सकता और सुख या दु ख का अनुभव सिर्फ मन अथवा आत्मा को ही होता है और ताकि उसे ये अनुभव हो, यह अनिवार्य है कि यह मन अथवा

आत्मा किसी-न किसी तरह के शरीर में रहे।

अगर आप कहें कि शरीर से हटकर, उससे अलग होकर [illegible] आत्मा सक्रिय रह सकता है, अनुभव कर सकता है [illegible] किसी तरह प्रमाणित नहीं कर सकते। यह अधिक-से-अधिक [illegible] कल्पना अथवा अनुमान हो सकता है।

हमने यह समझ लिया कि दुःख क्या है। अगर हम सच ही इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि शरीर के बगैर दुःख का अस्तित्व नहीं हो सकता तो हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि शरीर के अंत के साथ दुःख की हर सम्भावना का भी अंत हो जाता है। ऐसी हालत में मृत्यु हर प्रकार के दुःख से मुक्ति का सबसे बड़ा कारण हो जाती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं—मृत्यु ही मोक्ष है जहां तक हम मोक्ष का दुःख से सर्वथा छुटकारा के अर्थ में मानते हैं। अगर सुख और दुःख, दोनों से मुक्ति के अर्थ में मोक्ष को मानें तो भी शरीर से प्राण का निकल जाना, मृत्यु होना ही मोक्ष होगा, क्योंकि शरीर मर गया तो व्यक्ति मर गया और व्यक्ति शरीर के बगैर अस्तित्वहीन हो गया और जो अस्तित्वहीन है, जो है ही नहीं, उसे कहां से तो दुःख मिलेगा और कहां से सुख ?

लेकिन लगता है, सृष्टि के आदिकाल से कम-से-कम तब से जब विकासक्रम में कीट-पतंगों पशु-पक्षियों आदि से तरक्की करते-करते आदमी बना (जो शायद आज से बीस लाख वर्ष पहले हुआ हो या इससे भी अधिक) और जब उसे इतनी बुद्धि हुई कि भाषा बनने लगी और वह कुछ-कुछ सोचने लगा तभी से उसे मरने से, मरकर पूरी तरह समाप्त हो जाने से डर लगने लगा। जब भाषा ने इतनी प्रगति कर ली कि यह आदमी अमूर्त विचार भी करने लगा तो उसे लगा नहीं मृत्यु समाप्त हो जाना नहीं। मृत्यु के बाद भी आदमी रहता होगा। कि आज हम हैं, कल हमारी मृत्यु हो जाएगी और हम हमेशा के लिए समाप्त हो जाएंगे यह विचार ही आदमी को निराशाजनक लगने लगा। चूंकि जन्म के साथ ही जीते जाने की प्रवृत्ति लेकर वह आया था इसलिए मृत्यु के उपरान्त भी किसी-न-किसी रूप में जीवन रहना चाहिए ऐसी इच्छा उसे होती थी। यही इच्छा मृत्यु के बाद के जीवन की जन्मदात्री हुई कि हम मरकर समाप्त नहीं हो जाएंगे, हमारा जीवन फिर भी कायम रहेगा, भले रूप उसका अभी से भिन्न हो जाए यह विचार आदमी के लिए काफी संतोषप्रद हुआ।

जब उसने यह निश्चय कर लिया कि मौत के बाद भी जीवन है तो जहां एक ओर हमेशा के लिए समाप्त हो जाने वाली निराशा का भाव कम हुआ, अतः मृत्यु का पहला भय कम हुआ, वहां एक नई शंका उसके मन

मे उत्पन्न हुई। माना कि मृत्यु के बाद भी जीवन होगा। लेकिन इसका तो पता नही चलता कि वह जीवन होगा कैसा? उसमे होगा क्या? अगर उसमे भी, यही की तरह सुख और दुख, दोनो होगे तब तो किसी तरह चलेगा, क्योकि इन दोनो से हमारा परिचय है और उनके साथ गुजारा करना हमे आता है। लेकिन कही ऐसा हुआ कि उसमे, अगले जीवन में दुख ही दुख हो तो क्या होगा? अगर कभी उसके मन मे आया भी हो कि नही दुख ही दुख हो यह आवश्यक नही। सुख ही सुख भी तो हो सकता है। अगर ऐसा हो तब तो मौज ही मौज है। बल्कि इस बात पर अगर आदमी को पक्का विश्वास हो जाता तो हर आदमी जल्दी-से-जल्दी इस जीवन को खत्म करके अगले जीवन मे जाने की कोशिश करता। लेकिन ऐसा विश्वास उसे कभी नही हुआ। उसने इतना मान लिया कि अगले जीवन मे सुख की भी सम्भावना है और दुख की भी, जैसाकि इस जीवन मे है और जब वहा दुख की भी सम्भावना है और उसमे कैसे कैसे दुख हो सकते हैं इसका न तो ज्ञान है और न उसका ज्ञान होने का कोई उपाय है तो आदमी का मृत्यु का भय जरा भी कम नही हुआ।

लेकिन भय हो तो क्या? आप चाहें या न चाहे तो क्या? प्रकृति का नियम था कि आप पैदा होगे तो मरेंगे ही। इसलिए आदमी के मन मे हमेशा से मृत्यु का भय रहा और यह मानने के बाद कि मृत्यु के बाद भी जीवन की सम्भावना है यह भय भी रहा कि पता नही वह जीवन कैसा हो। उसमे कैसे-कैसे दुख हो।

इसी भय ने धर्म को जन्म दिया। अगर मृत्यु के बाद किसी जीवन पर विश्वास नही होता तो किसी धर्म (अथवा मजहब) की कभी आवश्यकता नही होती। चूकि आदमी अकेला नहीं होता, समाज मे रहता, इसलिए ताकि वह स्वय अधिक-से अधिक सुख से रह सके और दूसरो को भी दुख नही हो, उसने अपने लिए आचार सहिता व्यवहार शास्त्र अवश्य बनाया होता। अगर वह चाहता तो इसे ही अपना धर्म अथवा मजहब कह लेता लेकिन उस अर्थ मे वह धर्म का निर्माण नही कर पाता जिस अर्थ मे आज ससार के सारे धर्म हैं—जिनका अन्तिम लक्ष्य यह बताना है कि मृत्यु के बाद क्या होना है और आदमी भी क्या कुछ ऐसा करे कि मृत्यु के बाद उसे दुख नही हो चाहे तो उसे अनन्त सुख मिले या वह सुख दुख, दोना की सभावनाओ से मुक्त हो जाए। मृत्यु के बाद के जीवन पर तो विश्वास, लेकिन उसके सम्बन्ध मे सर्वथा अज्ञान ने आदमी के मन मे तरह-तरह की आशकाओ को जन्म दिया और उसने सम्भाव्य दुखो से छुटकारा पाने के लिए एक ईश्वर, निराकार ईश्वर, साकार ईश्वर तरह-तरह के देवी-देवता

जिनकी संख्या हिन्दुओं में तैंतीस करोड तक मानी गई या (यह तब की बात है जब हिंदुस्तान की आबादी तैंतीस करोड मानी जाती थी, अब यह सत्तर करोड है तो शायद देवताओं की संख्या भी सत्तर करोड मानी जाएगी) आदि बनाए। इन सबकी सृष्टि कर आदमी ने छुटकारे की सांस ली। उसे कहीं से कुछ आशा की किरणें दिखलाई दीं। जैसे-जैसे उसकी भाषा मे नए-नए शब्द बनते गए, भाषा सशक्त होती गई, वैसे-वैसे वह अधिक से अधिक विचार करता गया—अधिक विचार अर्थात् अधिक अनुमान, अधिक कल्पना।

अगर भाषा नही होती तो दुख होता, सुख होता, भय और शका भी होती, लेकिन न तो ईश्वर होता, न देवी-देवता होते, न धर्म होते, न दर्शन-शास्त्र होते। ज्ञान विज्ञान कुछ नही होता। अगर सच पूछा जाए तो भाषा नहीं होती तो हमे मोक्ष की भी आवश्यकता नहीं होती। हम जन्म लेते, आदमी के लिए प्रकृति प्रदत्त सारे आचरण करते जाते, सुख-दुख का अनुभव करते और अन्त मे मर जाते। हर व्यक्ति की कहानी उसके जन्म से आरंभ कर उसकी मृत्यु पर समाप्त हो जाया करती।

लेकिन सयोग से और हमारे दुर्भाग्य या सौभाग्य से हमारे पास भाषा है, भाषा मे लाखों शब्द हैं कैसे-कैसे शब्द हैं जिन्हे हमने जो चाहा है अर्थ दिए हैं और हमें पैदा होने के बाद से ही भाषा से सामना होना है हमें भाषा सिखलाई जाती है इसलिए हमारा सारा जीवन लगभग पूरी तरह भाषा के द्वारा और उसी से प्रभावित होकर चलता है।

आप कल्पना कीजिए कि आपके पास भाषा नही है, अब आप सोचिए, अगर, ऐसा हो तो क्या आप किसी को समझा सकते हैं कि देशभक्ति क्या होती है ? राष्ट्र भक्ति क्या होती है ? क्या आप उसे देश और राष्ट्र के लिए युद्ध मे जाकर अपने प्राण देने के लिए तैयार कर सकते हैं ? परस्पर मैत्री, पितृ-मातृ, भ्रातृ भक्ति, न्याय अन्याय उपकार-अपकार, अच्छा-बुरा कर्तव्य अकर्तव्य, पाप पुण्य कुछ भी तो भाषा के अभाव मे किसी को नही बताया जा सकता और जन्म के साथ प्रवृत्ति के रूप मे ये और इस तरह की सैंकडो चीजें मनुष्य के अंदर नही आतीं। यहा तक कि किसी एक या अनेक साकार या निराकार ईश्वर या देवता आदि का विचार भी आदमी को सहजात रूप मे नही मिलता। उसे तो बचपन से ही कह-कहकर समझाया जाता है कि देखो, ईश्वर है या अमुक-अमुक देवता आदि हैं, और वे खुश होते हैं तो तुम्हारा भला करते हैं, नाखुश होते हैं तो तुम्हे दुख दे सकते हैं और उन पर विश्वास करो, उन की भक्ति करो, उनकी प्रार्थना करो, पूजा चढाओ तो वे खुश होकर तुम्हारा कल्याण करेंगे, सारे धर्म

प्रवतक तथा प्रचारक इस सत्य को जानते हैं इसीलिए धम और ईश्वर के लिए इतन प्रचार की आवश्यकता होती है। ऐसे प्रचार म सारे ससार म बडे बडे उद्योगा और व्यवसायो की सामग्रिया की बिक्री के लिए होन वाले खच और प्रयास से हजारो गुना अधिक खच और प्रयास हर वक्त लगा हुआ है।

अगर वो ईश्वर या देवी देवताओ पर विश्वास प्राकृतिक होता तो जन्म के साथ ही बच्चे म इसका ज्ञान होता और वह खुद उन पर विश्वास करता। अगर ईश्वर या देवी देवता की सच ही आदमी को भक्ति या पूजा की जरूरत होती तो आप से आप आदमी मे इसका ज्ञान होता और वह भक्ति और पूजा करता जाता। किसी को उस समझाने की जरूरत नही होती कि भक्ति करो पूजा करो इससे तुम्हारा भला होगा। शरीर को पानी की आवश्यकता होती है तो प्यास लगती है। आदमी पानी पीता है। भोजन की आवश्यकता होती है तो भूख लगती है। आदमी खाना खाता है। सेक्स की आवश्यकता होती है तो सेक्स-पात्र की ओर ध्यान जाता है। किसी के यह कहने की जरूरत नहीं होती कि पानी पीना अच्छा है या खाना खाना अच्छा है या वह लडकी अच्छी है तुम उससे प्रेम करो। चूंकि ईश्वर या देवी देवता या मजहब प्राकृतिक नही, सहज नही इसलिए शिक्षा के द्वारा अनुकूलन के द्वारा कह-कहकर प्रचार के माध्यम से आदमी को इन सबके विचार दिए जाते हैं। इन चीजो पर उसमे विश्वास कराया जाता है। (अगर यह बात नहीं होती तो इतने विभिन्न प्रकार के धम नहीं होते, विभिन्न प्रकार के ईश्वर देवी-देवता नहीं होते, मरणोपरान्त क्या होता है इस सबध मे परस्पर विरोधी विभिन्न मत नही होते। तब ऐसा नही होता कि कोई हिन्दू तो बार बार जन्म लेता रहता, बार-बार मरता रहता और उसका यह आवागमन का चक्कर तबतक चलता रहता जबतक उसे मोक्ष या निर्वाण नहीं प्राप्त हो जाता और कोई मुसलमान या क्रिश्चियन मरता तो उसकी आत्मा कयामत के दिन का इन्तजार करती होती, उसका बार-बार जन्म नहीं होता। इतना ही नहीं अगर आवागमन वाला हिन्दू मुसलमान हो जाए तो उसका आवागमन का चक्कर साथ ही छूट जाएगा और मुसलमान अगर हिन्दू हो जाए तो उसका चौरासी लाख योनियो म घूमना आरम्भ हो जाएगा ऐसी अजीबो-गरीब बात पर विश्वास भी नही होता

इस तरह हम देखते हैं कि हमारा वास्तविक बन्धन हमारी शिक्षा का, हमारे अनुकूल का, जीवन और मत्यु और उसके बाद क्या होगा आदि के सबध में जो विचार हमारे अदर, भाषा के माध्यम से, कूट कूटकर भर

दिए गए हैं उन्ही का है। अगर हम इस बात को समझ सकें तो यह समझना आसान होगा कि वास्तविक मोक्ष तो अपने इन विचारों से मुक्ति ही है। हम इसे ज्ञानमार्ग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति कह सकते हैं। अगर हम उन सारे विचारों से मुक्त हो जाएं तो यह बताते है कि इस जीवन के बाद भी, मृत्यु के बाद भी, जीवन है, हमारे अन्दर एक आत्मा है जो शरीर नाश के बाद भी रह जाती है और उसे अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग या नरक मिलता है या अनन्त जीवन मिलता है, ईश्वर अपनी भक्ति और पूजा और धर्मों के द्वारा बताए गए नियमों के पालन से खुश होकर इनाम या दण्ड देता है, हमारा बार बार जन्म होता रहता है जबतक कि हमारा निर्वाण नहीं हो जाता आदि तो हमें मोक्ष मिल गया।

इस ग्रंथ में हिन्दुओं के आराध्य बृहस्पति, जो चार्वाक के नाम से विख्यात हैं जीवन में ही मुक्त थे और उनके या उनके जैसे सिद्धान्तों का मानने वाला हर व्यक्ति मोक्षलब्ध था। आज भी वैसा हर आदमी अपने जीवन-काल में ही मोक्ष प्राप्त कर चुका है।

वास्तविकता का, यथार्थ का ज्ञान ही मोक्ष है, और यह ज्ञान आप अपनी बुद्धि से तर्क शक्ति से, पूर्वाग्रह विहीन विचारों से प्राप्त कर सकते हैं, अपनी गलत शिक्षा, भ्रान्त अनुकूलन से छुटकारा पाकर प्राप्त कर सकते हैं।

लेकिन, दुर्भाग्य से, बचपन के अनुकूलन का प्रभाव इतनी आसानी से नहीं जा पाता। हमने ऊपर जो तर्क दिए हैं शायद आपको वे जचें। सम्भव है कि आपकी बुद्धि उन्हे मानना चाहे। हो सकता है कि आपने अपने आपको इस तरह तैयार किया हो कि आप तर्कसंगत बातों का ग्रहण करने के आदी हो गए हों और तर्कविहीन बातों का त्याग कर सकते हों। अगर ऐसा हो तब तो आप हमारी उपर्युक्त बातें मान लेंगे, वैसी हालत में आपका मोक्ष प्राप्त हो गया। जब तक आप जीवित रहेंगे, सुख-दुःख का अनुभव आपको होता रहेगा। आप जब मर जाएंगे तो हर सुख-दुःख से मुक्त हो जाएंगे।

लेकिन अगर आप भी भारतीयों के सामान्य व्यक्तियों की तरह होंगे तो आपकी बुद्धि अगर हमारी बातें मानने को भी कहेगी तो आपके मन के एक हिस्से में—एक बहुत बड़े हिस्से में—सन्देह रह जाएगा। आप कहेंगे कि सुनने में तो इनकी बातें सही लगती हैं, इनके खिलाफ तर्क भी नहीं दिया जा सकता, लेकिन फिर भी ये सच नहीं हो सकतीं। क्या यही सबसे बड़े विद्वान हैं ? हमारे सैंकड़ों ऋषि मुनि, बड़े-बड़े विचारक पीर पगम्बर अवतार, धर्मसंस्थापक जो भी कह गए है, क्या वह सारा गलत है ? नहीं ऐसा नहीं हो सकता। शायद हमारी बुद्धि में ही कहीं कुछ कमी है कि इनकी

वालों में तर्कसंगतता नजर आती है और हमें इनके तर्क के दोष पता नहीं चल रहे हैं, उनकी काट नहीं सूझ रही है।

ऐसा क्यों होता है, आप क्यों अपनी तार्किक-बुद्धि पर विश्वास नहीं कर सकते?

हमारे मन के दो भाग हैं—एक तो वह जिसके द्वारा हमें जाग्रत अवस्था में अपने परिवेश के हर कुछ का ज्ञान होता है और जिसके द्वारा हम सोचते हैं समझते हैं और अपने आचरण का नियंत्रण करते हैं। इसे हम चेतना का नाम देते हैं। मन का दूसरा हिस्सा वह है जिसका प्रत्यक्ष ज्ञान हमें नहीं होता, जिसके अस्तित्व के संबंध में हम अनुमान कर सकते हैं यह देखकर कि हम अनेक काम ऐसे करते हैं जिनके बारे में हमने चेतन रूप में, चाहकर नहीं सोचा है। जैसे हमारे सपने हैं जो हमारे सोचे बगैर आते हैं और ऐसे-ऐसे विचित्र रूपों में आते हैं जिनकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। या हमारे अन्दर अनेक ऐसे विचार आते हैं जिनके सर पाँव का कुछ पता नहीं चलता और हम उन्हें दबाने की चेष्टा करके भी दबा नहीं पाते, आदि। यह सब करवाने वाले भाग को अचेतन का नाम दिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने निरीक्षण तथा परीक्षण पर यह परिणाम निकाला है कि अगर चेतन-अचेतन दोनों को मिलाकर सम्पूर्ण मन माना जाए तो चेतन पूरे के दसवें हिस्से के ही बराबर होगा जबकि अचेतन नौ हिस्से के बराबर।

जन्म के बाद से ही हमारा जो अनुकूलन होने लगता है उसका अधिकांश हमारे मन के अचेतन अंश में चला जाता है। साथ ही हमारा अचेतन उत्तराधिकार के रूप में हमारे पूर्वजों के काफी सारे विचार भी लेकर आता है। आरम्भ के छः वर्ष की उम्र तक जो भी हमारी शिक्षा होती है, जो कुछ हमें कहा और बतलाया जाता है जो कुछ हम अपने परिवेश से ग्रहण करते हैं उसका बड़ा हिस्सा हमारे अचेतन में जाकर संस्कारों के रूप में बैठ जाता है। जब हम बड़े होते हैं, स्वयं विचार करने के योग्य हो जाते हैं तब भी हमारे बचपन के इसी अनुकूलन के कारण हम संस्कार रूप में बैठे अपने विचारों से छुटकारा नहीं पा सकते। आप कहेंगे—वाह! यह क्या बात हुई? माना बचपन में हम बुद्धि कम थी तो पापा ने कहा कौआ कान ले गया तो हम सब ही कान नहीं देखकर कौए को देखने की कोशिश करते हैं। लेकिन जब हमें बुद्धि हो जाएगी तो पापा के वैसा ही कहने पर हम पहले अपने कान को ही देखेंगे कौए को नहीं।

कहना आपका सही हो सकता है। लेकिन बदकिस्मती से ऐसा हो नहीं पाता। बड़े होने पर अपनी तर्क बुद्धि विकसित होने पर भी, अगर

फिर पापा ने कहा, मोक्ष कम से गया तो आपके बगैर चाहे भी पहले आपकी आखें कौए की तरफ ही जाएगी। तब इतनी बात अवश्य है कि उसके बाद आपका ध्यान अपना मान देखने की ओर जा सकता है।

लेकिन सयोग से जो बातें पूरी तरह से आपके अचेतन मे बैठ गई है वह इतनी सशक्त होती हैं कि अव्वल तो, अपनी बुद्धि होने पर भी, उनके ऊपर सन्देह करने की ओर आपका ध्यान ही नही जाता, उस ओर आपकी प्रवृत्ति नही होती और अगर कभी उनके विरुद्ध कुछ सुनते या पढते हैं तो भी उन्हे गलत साबित करने वाले तक ही आपको गलत लगते हैं आपके अनुकूलित विचार ही सत्य नजर आते हैं। अगर आप ऐसे विचार के विरुद्ध तर्क देने का प्रयास करते हैं (और प्राय हर व्यक्ति अपनी मान्यताओ के विरुद्ध तर्क करता है) तो आप वही सारी बातें कहते जाते हैं जिनसे आपकी बात सही साबित हो और आपकी मान्यताओ के विपरीत लगने वाले विचार गलत। ऐसा करते हुए अपने तर्कों के दोष आपको कतई नजर नही आते, अपनी तर्कहीनता आपको दिखाई नही पडती।

आप पूछेंगे, आप तो अपने को समझदार बुद्धिमान, तर्कसगत मानते है फिर आपका आचरण ऐसा क्यो होता है ? इसे समझने के लिए आप थोडी देर के लिए एक छोटे बच्चे के मन की कल्पना कीजिए।

छोटे बच्चे की छोटी-छोटी जरूरतें हैं, इच्छाए हैं। उनकी पूर्ति उसके माता पिता करते हैं। उसकी मा और उसके पिता उसके अपने की तुलना मे बहुत बडे हैं ऊचे-से ऊचे पहाड से भी बडे। वे सर्वशक्तिमान है। वह जो चाहता है वे उसे देते हैं। वे हर कुछ ऐसा कर सकते हैं जो वह स्वय करने मे अशक्त है। वह पूरी तरह उन पर आश्रित है। हर बडा व्यक्ति उसकी मा और उसके पिता जैसा ही उसे लगता है। ये बडे लोग उसे जो कहते हैं उसे परखने की उसे बुद्धि नही होती। उनकी कही गई हर बात उसे परम सत्य लगती है। उसका अनुभव यह भी कहता है कि यद्यपि उसकी तुरन्त की जरूरत उसकी मा पूरी करती है लेकिन उससे भी बडा एक और व्यक्ति है जिसकी बात उसकी मा मानती है। यह उसका पिता है। उसकी समझ मे आता है कि पिता मा से भी बडा है, मा से भी शक्तिशाली है। इसलिए पिता वास्तविक रूप म सर्वशक्तिमान है। जब उसे थोडी बुद्धि होती है और कभी खुद से सोचने लगता है कि शायद पिता से भी अधिक शक्ति रखने वाला कोई हो तो उसकी तुलना भी वह पिता से ही करता है और उसे परमपिता कहता है। उसे सिखलाया भी जाता है कि सासारिक पिता से अधिक ज्ञान रखने वाला शक्ति रखने वाला कोई है जिसे ईश्वर कहते हैं परमात्मा कहते है—वही परमपिता परमेश्वर है। अब जो सर्वशक्तिमान पिता है,

या उससे थोडी ही कम मा है, या पिता माता की तरह वे अन्य बडे लोग ह (इन्हे समाज, धम आदि के प्रतिनिधि कह लीजिए) उनकी बातें नही मानन उन पर स देह करने, उन्हे पूरी तरह आत्मसात् नही कर लने का उसके पास क्या कारण हो सकता है ? उनसे लिए गए सार विचार उसके अ तश्चेतन (अचेतन) मे जड जमा कर बैठ जाते हैं। यही सस्कार बन जाते ह। कहते भी हैं न, कि ईश्वर धम आदि तक की चीजें नही, विश्वास की चीजें है ईश्वर की कल्पना करने वाले, धम की स्थापना करने वाले बुद्धिमा। । तथ्य को जानते थे इसलिए बच्चे को प्रारम्भ से ही इनकी शिक्षा देते है ताकि तकबुद्धि के विकास होने के पहले ही वे उनकी बातो पर आख मूदकर विश्वास कर लेने के आदी हो जाए, ये विचार उसके अचेतन म बैठ जाए, स्वयसिद्ध सत्य के रूप मे, सस्कार के रूप मे दढ हो जाए।

और जब आप बडे हाने है तो आप अपने इन अचेतन म जड जमाए विचारो, तर्कों विश्वासो के गुलाम हात हैं। आप की बुद्धि लाख चाहे, आपका उनसे मुक्त हो सकना लगभग असम्भव होता है।

तो, अगर आप भी ऐस ही व्यक्तिया मे हैं तो आपको नानमाग से, इस विचार के कि चेतनायुक्त, मनयुक्त, शरीर से प्राण के अलग होते ही आपका अस्तित्व पूरी तरह समाप्त हो जाएगा और मत्यु के साथ ही आपको हर ब धन से, आवागमन से, सुख-दु ख से, आगे के जीवन आदि से मुक्ति मिल जाएगी, आपको माक्ष नही मिलेगा।

सच पूछिए ता मोक्ष की वास्तविक आवश्यकता आपको ही है। आपके चारो ओर ब धन ही-ब धन है, भय ही भय है। जीवनकाल तक भी ह और जाम्न के बाद तो अन त काल तक है। □

४

सम्मोहन और जादू

पिछले अध्याय म मैंने कहा कि आपके चारा ओर बन्धन-ही-बन्धन है सुख दु ख हैं, भय है, और सबसे अधिक मोक्ष की आवश्यकता आपका ही है।

इसके पहले कि मैं आपको यह बताऊ कि योग आप जैसे लोगा (पुरुषो और स्त्रियों) को मोक्ष किस प्रकार दिला सकता है हम मानव मन, हमारे आपके मन, की बनावट, उसका यथाथ स्वरूप, उसकी गुत्थिया और उसके रहस्या के सबध म कुछ और समझना चाहेंगे।

मैंने पिछले अध्यायों मे मन के चेतन और अचेतन, दो भागों के होने की बात कही है। आज से लगभग सौ साल पहले ऑस्ट्रिया के डॉ० सिगमड फ्रायड ने मनुष्य के मन मे एक अचेतन के होने की बात कही, बल्कि उन्होने तो चेतन अचेतन के बीच की कड़ी का होना भी बताया जिसका नाम उन्होंने पूवचेतन (प्रीकसश) दिया चेतन के ठीक नीचे और अचेतन क ऊपर रहने के कारण अनेक लाग इस अश को अवचेतन (सबकसश) कहत ह।

अगर हम मन को एक गेद समझें जो पानी मे तैर रही है ता इसका कुल दसवा हिस्सा तो पानी के ऊपर हागा जिसे हम चेतन कहग, बाकी का नौ हिस्सा पानी के अन्दर जो दीख नही पडेगा। यह हिस्सा हागा अचेतन। पानी के पूरी तरह नीचे और पूरी तरह उपर वाले हिस्सा के बीच थोडी जगह ऐसी होगी जा नीच और ऊपर, दाना ओर स दिखाई देगी। इसे हम पूवचेतन अथवा अवचेतन कह सकत हैं।

अचेतन मे मनुष्य की सारी प्रवत्यात्मक इच्छाए तथा उत्तराधिकार के रूप में मिले सामूहिक विचार वासनाए तथा अद्धचेतन—चेतन के द्वारा प्रेषित इच्छाए, ग्रन्थिया आदि होती हैं। चेतन मे हमारी अनुभवजन्य बुद्धि तक आदि होते हैं। हम जा भी सीखते है सोचत हैं, विचारते ह, अपने, आचरण को नियन्त्रित करते हैं, वह अपने चेतन के द्वारा करते हैं। जा हम

इतना अधिक सीख लेते हैं कि हर बार उस पर ध्यान देना आवश्यक नहीं रह जाता वह हमारे अचेतन में चला जाता है और वह हमारे विचारों को अन्दर से प्रभावित करता रहता है। इसका कुछ अंश तो अवचेतन में रहता है जिस पर हमारा नियन्त्रण होता है और हम बुद्धि के द्वारा उसका रूप बदल भी सकते हैं। लेकिन हमारी शिक्षा का, विशेषकर जन्म से लेकर छ साल की उम्र तक की शिक्षा (अनुकूलन) का, अधिकांश हमारे अचेतन में चला जाता है और वह हमारे चेतन नियन्त्रण और अधिकार के बाहर हो जाता है। वह हमारे विचारों वासनाओं और आचरणों को प्रभावित करने में पूरी तरह समर्थ होता है। लेकिन अपनी इस शिक्षा के किसी भी भाग को हम प्रभावित नहीं कर पाते। यही हमारे संस्कार होते हैं जिन्हें हम पूर्वजन्म से प्राप्त तथा अपने बड़ों द्वारा प्रदत्त मानते हैं।

फ्रायड के अनुसार मन को तीन अन्य नाम भी दिए जा सकते हैं—वे हैं अदस (इड) अहम् (ईगो) और पराहम (सुपर ईगो)। अदस पूरी तरह अचेतन होता है जिसमें हमारी प्राकृतिक इच्छाएं तथा पूर्व पुरुषों से प्राप्त विचार होते हैं। यह पूरी तरह अचेतन होता है। इसमें तर्कशक्ति का पूर्णतया अभाव होता है। अहम् अचेतन-चेतन के बीच होता है जो दोनों को मिलाता है। इसमें तर्कशक्ति होती है। यह हमारे सेंसर का भी काम करता है। पराहम् अचेतन में रहता है। यह बचपन की माता पिता तथा समाज द्वारा दी गई सीखों से बना होता है और अन्तःकरण का काम करता है। यह अहम् को पाप पुण्य अच्छे-बुरे का ज्ञान देता रहता है। हमारा व्यक्तित्व इन्हीं तीनों का बना होता है और इन्हीं के द्वारा परिचालित होता है।

हम जो भी है अपनी प्रवृत्यात्मक इच्छाओं प्रेरणाओं तथा वासनाओं के साथ मिलकर आत्मसात हो गई शिक्षा के सम्मिलित रूप हैं। जिसे हम मुक्त चिन्तन अनुमान कल्पना आदि कहते हैं व हर कदम पर इनसे प्रभावित होते रहते हैं।

जैसा हम पहले भी कह आए हैं, जन्म के बाद बच्चा पूरी तरह मां बाप और बाहरी वयस्क व्यक्तियों पर निर्भर होता है। पिता माता उसकी हर जरूरत पूरी करने की ताकत रखते हैं इसलिए वे उसके लिए सब शक्तिमान होते हैं। उनका प्यार पाना उसके अस्तित्व के लिए अनिवार्य होता है। उसने अनुभव से शीघ्र ही सीख लिया होता है कि वे उसकी हर इच्छा पूरी तो करते हैं लेकिन उनकी बात नहीं मानने पर कभी-कभी वे उस पर नाराज भी होते हैं और तब उसे कम प्यार देते हैं उसकी इच्छाएं पूरी नहीं करते। इसलिए उनकी हर बात ज्यों-की-त्यों परमसत्य मानकर

ग्रहण करना उसका स्वभाव बन जाता है। उनका हर आदेश पालन करना उसके लिए प्रवृत्ति जैसा हो उठता है। इसे हम प्रभावनीयता या सम्मोहनीयता कहते हैं। जब बच्चे से बढ़कर हम वयस्क हो जाते हैं, तब, हमारी उम्र चाहे जितनी भी हो, हमारे अंदर यह प्रभावनीयता (आदेश पालन करने का गुण) काफी हद तक वर्तमान रहती है।

सम्भवत आपने सम्मोहन (हिप्नाटिज्म अथवा हिप्नासिस) का नाम सुना हो। शायद आपने किसी हिप्नोटिस्ट को किसी व्यक्ति (अथवा व्यक्तियों) को सम्मोहित करते भी देखा हो। सम्मोहित व्यक्ति सो जाता है और सम्मोहक की हर बात ज्यों-की-त्यों मानता है। सम्मोहन की अवस्था में अगर सम्मोहक एक लकड़ी का टुकड़ा देकर उसे कहे—देखो यह रसगुल्ला है तो वह उस स्वाद से खा जाएगा और पूछने पर कहेगा, उसने रसगुल्ला खाया है और वह बहुत मीठा लगा। सम्मोहन की स्थिति में सम्मोहित की तर्कशक्ति, गलत-सही समझ सकने की शक्ति पूरी तरह सो जाती है और उसकी प्रभावनीयता इतनी अधिक हो जाती है कि सम्मोहक की कोई बात उसे गलत लग ही नहीं सकती चाहे आमतौर पर वह जितनी ऊलजुलूल और असम्भव क्यों न हो। सम्मोहन की स्थिति में सम्मोहित सम्मोहक की हर आज्ञा का पालन करता है और उसकी हर बात को सच मानता है।

सम्मोहन की एक खूबी यह भी है कि सम्मोहन की नींद में अगर सम्मोहक उसे आदेश दे दे कि दो घंटे के बाद, या दो महीने के बाद, या दो साल के बाद अमुक समय पर वह फलां काम करेगा और उसे बिल्कुल पता नहीं होगा कि वह ऐसा क्यों कर रहा है तो वह बताए हुए समय पर वैसा करेगा ही, इसमें अन्यथा नहीं हो सकता। ऐसे आदेश को पोस्ट हिप्नाटिक सजेश्चन कहते हैं।

(इस पर अपने बचपन की एक बात याद आ रही है। मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय के साइंस कॉलेज के एम० ए०, मनोविज्ञान का विद्यार्थी था। यह सन् १९३९-४० की बात है। उन दिनों हम सम्मोहन सीख रहे थे। हमारे पाम एवेन्यू के फ्लैट में हम तीन साथी थे। एक दिन मैंने अपने रसोइए नन्हका को हिप्नोटाइज करके आदेश दिया कि तुम ग्यारह बजकर पन्द्रह मिनट पर पलंग के नीचे से तबला निकालकर बजाने लगोगे लेकिन तुम्हें पता नहीं होगा कि ऐसा क्यों कर रहे हो।

(लगभग ग्यारह बजे हमारे साथी देवी प्रसाद मोहान्ती, और इन्दिरा कान्त शर्मा आए। जगमोहन लाल के सामने मैंने सम्मोहन कर उक्त आदेश दिया था। मोहान्ती जी उसी पलंग पर बैठे थे जिसके नीचे हमारी

तबला-डुग्गी का जोडा रखा हुआ था। हम चारो गपशप कर रहे थे। जगमोहनलाल और मैं घडी देख रहे थे और आखो आखो मे बातें कर रहे थे कि देखिए, नन्हका क्या करता है। ग्यारह बजकर चौदह मिनट पर रसोई छोडकर वह हमारे कमरे में आ गया, पलग के नीचे से तबला-डुग्गी निकाली और जमीन पर बैठकर बजाने लगा। मोहान्ती जी और शर्मा हैरान कि इसको यह हुआ क्या है कि इस तरह का आचरण कर रहा है।

(जगमोहन लाल ने पूछा—क्यो नन्हका, अभी आकर तबला क्यो बजा रहे हो ?

(तो बोला—बजाने का मन हुआ बाबू इसलिए बजा रहे हैं।

(उसके बाद मैं और जगमोहन लाल ठहाके लगाकर हस पडे। नन्हका का रसाई मे भेजकर हम लोगो ने मोहान्ती जी और इंदिरा कान्त को सारी बात बताई तो वे भी खूब हसे। उसके बाद तो प्राय ही नन्हका को पोस्ट हिप्नोटिक सजेश्चन (सम्मोहनोत्तर आदेश) देकर हम खुश हुआ करते थे।

(मानसचिकित्सा मे कई बार चिकित्सक सम्मोहन का सहारा लेते हैं और अनेक बीमारियो का इलाज सम्मोहनोत्तर आदेश के द्वारा किया जाता है। आम तौर पर हम मानसिक विश्लेषण (जैसे मनोविश्लेषण आदि) पर आधारित चिकित्सा पद्धतियो का ही उपयोग करते हैं। हिप्नोसिस के द्वारा रोग के लक्षणो को साधारणतया अस्थायी तौर पर ही दूर किया जा सकता है। इसलिए जब तक चाहे तो रोगी के पास समय या सामर्थ्य का अभाव नही हो या विशेष परिस्थितियो मे हिप्नोसिस के बगैर विश्लेषण सम्भव नही हो तब तक हम हिप्नोसिस का व्यवहार नहीं करते।)

यह माना जाता है कि हमारे सारे दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि चाहे तो स्वय ईश्वर या देवी-देवताओ की देन हैं या वे अवतारो, पैगबरो, चिन्तको, ऋषियो-महर्षियो की प्रेरणाओ तथा चिन्तन से उद्भूत हैं। हम साधारणतया अपने दार्शनिक तथा धार्मिक मान्यताओ को, वे बचपन से जिस रूप मे दी जाती हैं उसी रूप मे, बगैर सोचे विचारे मानते चले जाते हैं। कम ही लोग हैं (और ऐसे लोगो की संख्या शायद हजारो मे एकाध ही होती है) जो ऐसी मान्यताओ के सम्बन्ध मे तर्क करते हैं विचार और बुद्धि पर उनकी सत्यता असत्यता की परख करते हैं। उनमे भी अधिकाश अपने ऐसे तर्कों के समय अपने बचपन से चले आए विश्वासो के द्वारा काफी हद तक प्रभावित होते हैं। जैसाकि मैंने ऊपर कहा है अपने अदर अत्यत प्रबल सम्मोहनीयता होने के कारण हम अधिकतर दार्शनिक तथा धार्मिक (और सामाजिक भी) मान्यताओ पर सन्देह कर ही नहीं पाते। हमारे

अदर वह प्रवृत्ति ही नही होती, इसलिए क्षमता भी नही होती। हमारा सारा जीवन सिर्फ विश्वास पर चलता रहता है।

आत्मा-परमात्मा, पूवजन्म, पाप-पुण्य, स्वग-नरक, बधन, मोक्ष आदि सबधी हमारी मान्यताए अधिकाश मे हमारे सम्मोहनजनित विश्वास होते हैं।

इसीलिए कहा जाता है, ईश्वर के बारे मे तक मत करो, अवतारों, पैगबरों, ऋषि-महर्षियो द्वारा दिए गए धर्मों के बारे मे मत सोचो। इन सब पर सिर्फ विश्वास करो, क्योंकि उन्होंने जो कहा है वही परम सत्य है और तुम तो एक क्षुद्र प्राणी हो, तुम्हारे अदर इतनी बुद्धि नहीं कि उनकी बातो के रहस्य समझ सको।

और आपको उनकी महानता तथा उनकी बातों की अकाट्यता एवम् अपनी क्षुद्रता पर इतना घोर विश्वास होता है कि आप उनकी हर बात ज्यो-की-त्यो मानकर चलते रहते हैं। क्योंकि सम्मोहन और सम्मोहनोत्तर आदेश हमेशा आप पर हावी रहते हैं और ये आपके अचेतन की चीजें हैं और यह अचेतन आपके चेतन नियत्रण के परे होता है। इस अचेतन को आप बच्चा समझ लें जिसे बुद्धि नही होती और यह हमेशा माता पिता की बात मानने को तत्पर रहता है क्योंकि इसीमे उसका हित है, क्योंकि वही उसकी सारी प्राकृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति करते हैं।

बडा की बात मानकर, समाज की बात मानकर, जो दस आदमी कहते हैं वह मानकर चलना, उनके बताए माग पर अपना जीवन बिताना एक सामान्य आदमी के लिए सबसे सरल रास्ता होता है—अल्पतम बाधा की राह उसके लिए यही है। सामान्य जन अपने जीवन के सघर्षों मे इस तरह उलझा रहता है कि बडे लोग, और धर्म और समाज आदि उसे जो कहते हैं उनकी सत्यता पर सन्देह करने, उनके बारे मे सोचने विचारने का उसके पास समय ही नही होता और अगर समय होता भी तो वह अपनी सम्मोहनजनित मानसिकता से इस तरह अभिभूत होता है कि वह ऐसा करने की क्षमता नही रखता। उसका सारा परिवेश उसे चली आती बातो को ज्यो की-त्यो मानने को विवश रखता है। उसे यही स्वाभाविक लगता है। अगर कभी वह किसी विद्वान् की सगति मे आकर परम्परागत विश्वासों के खोखलेपन को जान भी जाता है और उनपर से आस्था हटा लेता है तो भी फिर अन्य लोगो की सगति मे आकर उसकी नई धारणाए बदल जाती हैं और फिर पुरानी मान्यताओ मे लौट आता है। मैंने एक असाधारण बुद्धिमती लडकी को देखा है जिसे एक विद्वान की सगति मे कई वष रहने का अवसर मिला था। धर्म, दशनशास्त्र आदि के अध्ययन, मनन तथा उक्त

विद्वान की शिक्षाओ के प्रभाव मे वह अनीश्वरवादी हो गई थी, देवी देवताओ, मन्दिरो और मूर्तियो आदि पर से उसका विश्वास उठ गया था, और अपना जीवन वह बुद्धि और तर्क के सहारे चला रही थी। कुछ दिनों के बाद उसका परिवेश बदल गया और उस विद्वान का साथ उसे छूट गया। नये माहौल मे वह कुछ दिन भी नही रही थी कि उसने बुद्धि और तर्क से काम लेना छोड दिया और अपने पुराने विश्वासो पर लौट आई। जहा वह लोगो को मूर्तियो पर सर झुकाए देखकर उनपर तरस खाती थी वहा अपने एक हीरे के कानफूल के खो जाने पर देवी की मानता मानी और संयोग से अपने कमरे म ही उसके मिल जाने पर पहाड पर जाकर उक्त देवी को चढावा चढा आई। अब तो वह अपने डेढ दो साल के बच्चे को भी हर मूर्ति और देवी-देवता के चित्र के सामने सर झुकाना सिखलाती है और तिरुपति के मदिर मे वेंकटेश्वर की मूर्ति के दर्शन कर समझती है, वह प्रभु ही उसका और उसके परिवार का कल्याण करेंगे। न सिर्फ इतना, वह उस [illegible], जिसने उसे तर्क तथा बुद्धि से काम लेना सिखलाया था क्योंकि वह मनुष्य था, सम्मोहनग्रस्त व्यक्ति नही, यह दोष देती है कि उसने क्यो उसे ऐसा सिखलाया था क्योकि उसने पाया है कि लीक पर चलना आसान होता है और तर्क तथा बुद्धि से काम लेकर अपनी लीक बनाना कठिन तथा कष्टसाध्य।

आम लोग इसी लडकी की तरह होते है। लीक पर चलना उनके लिए आसान होता है, तर्क तथा बुद्धि से काम लेकर अपनी लीक बनाना उनके लिए कठिन तथा कष्टसाध्य। अल्पतम बाधा का उनके लिए यही मार्ग होता है—क्योकि वे अपने जाग्रत जीवन के भी अधिक भाग मे सम्मोहित रहते है।

सम्मोहन के सबध मे इतना कहने के बाद जादू के बारे मे भी दो बात कहना अपने विषय को समझने मे सहायक होगा।

हमम से काफी लोग जादू पर विश्वास करते है। चमत्कार जादू का ही दूसरा नाम है। हमने अपनी पुस्तक के आरम्भ मे बाल योगिनी सरस्वती अम्मा की बात कही है जो कुकुम मे से निकालकर मूर्तियां दिया करती थी। सुना है साई बाबा भी ऐसा करते है। काफी लोगो न ऐसे-वैसे साधु-सन्त देखे हैं जो मिट्टी म से इत्र और शून्य मे से स्विस घडिया आदि निकालकर लोगो को देते हैं। इन करतबो को देखकर लोगो को ऐसे व्यक्तियो की अलौकिकता पर विश्वास होना स्वाभाविक है। क्या हिन्दू क्या मुसलमान क्या ईसाई सभी अपने देवी-देवता, पीर-पैगम्बरो के चमत्कारो का बखान करते है। किसी के देखना न वह किया तो आसमान से अप्सराएं उतर

आईं, किसी पैगंबर ने कहा तो चाद के दो टुकड़े हो गए, किसी ईश्वरपुत्र ने दो चार मछलियो से हजारो लोगो की भीड के पेट भर दिए। हर धर्म-प्रचारक ऐसे-ऐसे चमत्कारो की बात कहकर ही अपने देवी देवताओ, पैगंबरो आदि पर विश्वास पैदा कराने का प्रयास करता है।

मैं यह नही कहना चाहता कि उपर्युक्त अथवा उन जैसी चमत्कारिक बातो का लोगो द्वारा देखा-जाना झूठा था। लेकिन हम सामान्य जादूगरों द्वारा ऐसे ऐसे जादू देखते हैं कि बुद्धि काम नही करती, हम दग हो जाते हैं। वे भी शून्य मे से फल-फूल, खरगोश, कबूतर आदि निकाल देते हैं, जमीन पर पडी लडकी को अधर मे लटका देते हैं आदि। तो फिर इन चमत्कारों के कारण उन्हे पैगंबर या भगवान क्यो नही मानते ? हम तो कहते हैं—अरे, वह तो जादूगर है, जादू के खेल दिखाता है। यानी हम जानते हैं कि जादू भी एक कला है, एक विज्ञान है। उसमे कुछ अलौकिक नही। भ्रम (इल्यूजन तथा हैलूसिनेशन) पैदा करना ही जादू है।

यह तो हम जादूगरो के जादू के सबध मे समझते हैं। लेकिन अनेक ऐसे जादुओ पर हमारा विश्वास होता है जिसे हम सच ही अलौकिक मानते हैं—उन्ह श्रुतिभ्रम, दृष्टिभ्रम, बुद्धिभ्रम नही मानते।

आप यह समझने की चेष्टा करें कि ऐसे जादू पर हमे क्यो ऐसा अडिग विश्वास होता है।

इसका पहला कारण तो हमारे ऊपर काम करने वाला सम्मोहन होता है, जिसकी काफी चर्चा हम ऊपर कर आए हैं।

दूसरा कारण हमारे प्रारम्भिक बचपन के अनुभव होते हैं। हम उसी समय से इच्छाओ और शब्दो के जादू की बात जानना और उनपर विश्वास करना आरभ कर देते हैं।

आप फिर एक बार एक छोटे शिशु के मन की कल्पना कीजिए। उसे भूख लगी है, उसकी इच्छा दूध की हुई है। वह इधर उधर देखता है, हाथ-पाव मारता है। अगर उसकी मा आसपास हुई तो उसने समझ लिया, बच्चे को भूख लगी है। आकर उसे दूध देने लगती है। यह हुआ शिशु की इच्छा के जादू का कमाल।

कुछ बडे होकर उसे कुछ-कुछ बोलना आने लगता है। वह दुदू, मम आदि कहना सीखता है। उसे भूख लगती है, वह कहता है—दुदू, और मा उसे आकर दूध पिलाती है। वह कहता है—मम और मां उसे पीने को पानी देती है। यह हुआ शब्दो के जादू का कमाल।

आगे चलकर हर तरह के जादू पर विश्वास, वह चाहे इच्छाशक्ति का हो अथवा मत्र-तत्रों का, बचपन के इन्ही अनुभवों पर आधारित होता है।

धर्म मे, पूजा-पाठ मे, योग मे, हर मत्र मात्र हमारी इच्छाओं, कामनाओं का प्रतिनिधि होता है। भगवान, हमे यह चाहिए, तुम हमे यह दो। यह चाहे तो साधारण तौर पर समझी-बोली जानेवाली भाषा के द्वारा कहा जाता है—अथवा प्रतीकात्मक शब्दो के द्वारा। हिन्दुओ मे सारे मत्र सस्कृत मे होते हैं (ऐसा लगता है जानो इनके भगवान, देवी-देवता सस्कृत छोड और कोई भाषा नही समझते), इसी तरह अलग अलग धर्मों के मत्र उन भाषाओ मे होते हैं जो भाषाए उस काल मे प्रचलित थी जब उनके धर्म-सस्थापक हुए थे। और हम यह मानते हैं कि अगर पूरी श्रद्धा और भक्ति से पूरे नियम से, बार-बार उन मन्त्रो का उच्चारण करते रहे, उनका निरतर पाठ करते रहे, उनके सबध मे बताए गए अनुष्ठान करते रहे तो उनका जादू फलित होगा ही, हमारी माग पूरी होगी ही।

तत्रयोग मे ह्लि, ल्रि, स्रि आदि निरर्थक शब्दो के जाप का विधान है। इन पर हमारा विश्वास उसी तरह सम्मोहनजन्य और बचपन के अनुकूलन के कारण है जैसाकि साथक मत्रो पर होता है। इन मन्त्रो का वही लाभ हो सकता है (बशर्ते कि हो) जो होने की बात हमे गुरुओ ने बताई होती है। अपने आपमे वे व्यर्थ हैं ठीक वैसे ही जैसेकि हम मरुभूमि मे चिल्ला चिल्लाकर पानी मागते रहें कहते रहे, अरे कोई हमे पानी दो और वहा कोई सुनने वाला नही हो। जब हम साथक अथवा निरर्थक मत्रो का, पूरी आस्था के साथ जाप करते रहते हैं तो हमी कहने वाले होते हैं और हमी सुनने वाले और उनके अर्थ वही होते हैं जो हमने, चाहे गुरु से सुनकर या स्वय सोचकर, बनाए होते हैं।

रही बात उनसे सच ही जादू हो जाने की, तो उनका उतना प्रभाव तो होगा ही जितना सम्मोहन मे होता है।

अगर आप इतना समझ सके हैं तो आप आसानी से समझ सकेंगे कि योग विशेषकर ध्यानयोग अथवा राजयोग, किस प्रकार आपको मोक्ष दिला सकता है।

आपको अपने सम्मोहनजनित अनुकूलन के कारण आत्मा तथा परमात्मा के अस्तित्व पर, पुनर्जन्म पर मृत्यु के बाद स्वर्ग-नरक पर अनन्त जीवन पर पूरा विश्वास है। आप मानते हैं कि आपकी आत्मा परमात्मा का अश है वह निरन्तर उसी परमात्मा मे विलीन होने को व्याकुल रहता है। आपको मृत्यु से भय है मृत्यु के बाद दुख की सम्भावना से भय है। मृत्यु के बाद शाश्वत सुख की सभावना का विश्वास है और उसका लोभ है।

अब अगर आपको इसपर भी विश्वास हो जाए कि योग साधना के

द्वारा, त्याग, तपस्या, ब्रह्मचय, ध्यान, धारणा, समाधि के द्वारा आपको आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक तीनो तरह के दुखो से छुटकारा मिल सकता है, आपको बाइबल मे बताया गया अनन्त जीवन प्राप्त हो सकता है आपको सुख-दुख, आवागमन से मोक्ष मिल सकता है, आपकी आत्मा का परमात्मा मे विलय हो सकता है तो यह सारा होना, आपके लिए सभव है। योग-साधना आपके लिए यह सब कर सकने मे सक्षम है कि मृत्यु के बाद ऐसा ही होगा, दिन रात ध्यान में, समाधि मे अपने आपका यह कहते रहने से एक ऐसी अवस्था आएगी जब आपको लगेगा, सच ही आप दुख, भय, आवागमन आदि से मुक्त हो गए हैं और आपकी आत्मा परमात्मा में विलीन हो गई है, आपको निर्वाण मिल गया है। शरीर, शरीर के साथ चिपटा हुआ मन, मन की सारी आवश्यकताए, इच्छा-अनिच्छाए, दुख-सुख आपके लिए निरथक हो जाएगे। आप हर कुछ के ऊपर हो जाएगे। यही तो मुक्ति है, यही तो मोक्ष है।

इसके बाद शरीर रहे न रहे, आपको कोई अन्तर नही पडता। मत्यु के बाद, शरीर के समाप्त होते ही, आपके लिए आपकी कल्पना के अनुसार, चाहे तो चिदानन्द मिलेगा, अनन्त जीवन मिलेगा या आपको पूरा मोक्ष मिल जाएगा।

यह सारा आपके लिए होगा।

क्योंकि शरीर से प्राण के अलग हो जाने के बाद तो सच ही सबकुछ समाप्त हो जाता है।

और अगर कुछ रह भी जाता हो, शरीर के साथ रहने वाली आत्मा का कोई अश, व्यक्तिगत रूप मे, कि वह वही है जो शरीर की मत्यु के पहले या इस ज्ञान के साथ, तो इस सबध में, हजारो साल के चितन मनन और तरह-तरह के दशनो के बावजूद, आदमी निश्चित रूप मे कुछ भी नही जान सका है।

भविष्य मे कभी जान भी सकेगा या नही, यह भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता।

अत मे मैं यह कहना चाहूगा कि जो आप निश्चित रूप से जान सकते हैं जो आप अपने अनुभवो के बल पर देख परख सकते हैं आप उसी पर विश्वास करके मृत्यु के बाद के काल्पनिक दुखो की कल्पना से अपने को पीडित न करें, क्या यह अधिक अच्छी और बुद्धिमानी की बात नही होगी?

अर्थात आप ज्ञानमाग मे मोक्ष प्राप्त करें।

अन्यथा, अगर आप हर अतजानी चीज पर विश्वास करते ही हैं तो योगमाग से आपको निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

५

दार्शनिको का मनोविज्ञान

अबतक मैंने जो कहा है उसपर आप कह सकते हैं कि क्या मैं ही सब से अधिक विद्वान हू और मेरी ही बाते सच हैं ? पहले के जो इतने बडे-बडे दार्शनिक, धर्म सस्थापक पैगबर ऋषि मुनि कह गए हैं सब गुमराह थे ? कुछ भी नही जानते थे ? या जो जानते थे, गलत था ?

मैं नही कहता कि मैं ही सबसे विद्वान हू। मैं तो इतना ही कह सकता हू कि मैंने भी कुछ पढा है, बडे-बडे विद्वानो के पास बैठकर जानने की कोशिश की है सोचा है, विचारा है और मैंने कुछ परिणाम निकाले हैं। अगर किसी ने कहा—मैं खुदा का बेटा हू और तुम मेरी बात मानो, या किसी ने कहा—अल्लाह एक है और मैं उसका पैगबर हू तो लोगो ने मान लिया और आज उनकी हर बात को सच मानने वाले करोडो लोग है जिनमे एक से-बढकर एक विद्वान हैं—पुरुष भी स्त्रियाँ भी। तो अगर मैं अपनी बात कहता हू तो आप उसपर भी गौर क्यो नही करते ? क्या उन्होने या उन जैसे अन्य महापुरुषो ने चमत्कार दिखलाए थे, कोई पानी पर पैदल चला था तो कोई उगली दिखलाकर चाद के दो टुकडे कर दिखाए थे, इस लिए ? तो आप मेरे पास आए—मैं भी आपको कई तरह के चमत्कार दिखला दूगा। मानसचिकित्सा के दौरान मैं सम्मोहन करता हू। एक, या अनेक को एक साथ, सम्मोहित करके मैं अनेक प्रकार के चमत्कार दिखा सकता हू। लेकिन इसी कारण मैं अपने आपको न तो अलौकिक व्यक्ति मानता हू और न आपको ऐसा करने को कहूगा।

अगर मैं कहू मेरी विद्वता उतनी ही है जितनी न्यूटन की थी जब उसने जीवन के अतिम दिनो मे कहा था कि ज्ञान के मामले मे तो वह जैसे समुद्र के किनारे बैठा ककडिया ही चुनता रहा तो शायद आपको लगे नम्रता दिखाने की आड मे मैं भी अपने को न्यूटन की तरह महान कहने की चेष्टा कर रहा हू।

लेकिन मेरे लिए भी न्यूटन वाली उक्त बात सही है। और जैसे यह कह भर देने से न्यूटन के आविष्कारों और सिद्धान्तों का महत्व कम नहीं हो जाता वैसे ही मेरी बातों, सिद्धान्तों का महत्व भी कम नहीं हो पाएगा।

वैसे तो मैं पिछले अध्यायों में इशारे से कह चुका हूँ कि विद्वानों के चिंतन पर भी उनके अनुकूलन और बाल्यावस्था से परिवेश से चले आए सम्मोहन का प्रभाव होता ही है फिर भी यहाँ यह बतलाने का प्रयास करूँगा कि बड़े-बड़े दार्शनिक जो सोचते हैं वह क्यों सोचते हैं, जो सिद्धांत बनाते हैं वह क्या बनाते हैं। इस तरह मैं आपको यह बता सकूँगा कि योग के बारे में भी जो सिद्धांत बनाए गए हैं वे क्या और कैसे बनाए गए होंगे।

आदमी जन्म के साथ ही अपने अंदर कुतूहल लेकर आता है। अगर उसके अंदर कुतूहल नहीं हो—हर कुछ जानने की प्रवृत्ति, इच्छा, नहीं हो तो वह जीवित नहीं रह सकेगा। उसके अस्तित्व के लिए शिशु को यह जानना अनिवार्य है कि यह माँ है, इससे उसे दूध मिलता है, ऊष्मा मिलती है, सुरक्षा मिलती है। यह दूध पिया जा सकता है और कटोरे के उस सफेद-सी वस्तु को छू लेने से हाथ को पीड़ा होती है, हाथ जल जाता है। यह लाल-लाल चीज अच्छी लगती है, देखने में, सूँघने में, छूने में, वह लाल-लाल चीज भी अच्छी लगती है—देखने में। लेकिन उसे छू लेने से हाथ को पीड़ा होती है हाथ जल जाता है, आदि।

अगर वाणी के अंदर जानने की, ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति नहीं हो तो वह क्या खाए, क्या नहीं खाए, क्या स्पर्श करे, किससे बचे आदि नहीं जान सकेगा और एक ओर बिना खाए पिए भूख से मर जाने की संभावना रहेगी तो दूसरे ओर जलकर, डूबकर मर जाने की संभावना होगी। लेकिन पैदा होकर जीते जाने की इच्छा—प्रवृत्ति—लेकर वह आता है यह स्वयं-सिद्ध है। इसलिए हर कुछ जानने की इच्छा, कुतूहल लेकर भी वह आता है।

यह कुतूहल ही ज्ञान तथा दर्शन का जनक है।

हर व्यक्ति के अंदर कुतूहल की मात्रा एक-सी नहीं होती। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो किसी तरह अपने काम चलाने लायक बातें जानकर ही संतुष्ट हो जाते हैं। जबकि अन्य कुछ ऐसे होते हैं जिनका मन सिर्फ काम चलाने लायक बातें जान लेने भर से नहीं भरता—वह हर कुछ जान लेना चाहते हैं—वह भी जो प्रत्यक्ष है, वह भी जो दूर है, दृष्टि से परे है, पर्दे के भीतर या पीछे है। वे हर रहस्य का भेद करना चाहते हैं। सृष्टि का जो कुछ है (और जो नहीं है) उसका, सृष्टि के पीछे का, उसके प्रारंभ

का, उसके अंत का, सब कुछ जाने बिना उन्हें तृप्ति नही मिलती। उनका कुतूहल सीमाहीन होता है।

ऐसे लोग हर रहस्य को समझने मे लीन होते हैं। यही लोग ज्ञानी विज्ञानी होते हैं, दार्शनिक होते हैं। विज्ञान अथवा दर्शनशास्त्र के आविष्कार इन्ही के निरीक्षण, परीक्षण, अध्ययन, चिन्तन-मनन के परिणाम होते हैं, हम इन्हे विद्वान कहते हैं।

ऐसे लोगो के मन मे निरंतर प्रश्न उठते रहते हैं। जो बातें समझ मे नही आती उनके संबध मे कुछ अधिक प्रश्न ही उनके अंदर उठते हैं। क्यो ? कैसे ? ये खोज हर वक्त उनके साथ होती है।

ऐसा आदमी सृष्टि के आरम्भ से – कम-से-कम तबसे जब विकासक्रम मे प्राणी मनुष्य बना है और अपने लिए उसने एक भाषा का आविष्कार किया है—अपने आसपास की दुनिया और उसके परे के सत्य के संबध मे प्रश्न करता आया है। उसे हर प्रश्न का उत्तर चाहिए। जबतक उसके किसी प्रश्न का उत्तर नही मिल जाता, उसे चैन नही पडता। उसकी खोज मानव इतिहास के आदिकाल से चली आई है, आज भी निरंतर चल रही है और तबतक चलती ही रहेगी जबतक सारा विश्व नष्ट नही हो जाए। यह बात न सिर्फ हमारी इस पृथ्वी के बारे में सच है बल्कि उन हजारो-लाखो ग्रह-नक्षत्रो के संबध मे भी सच है जहा बुद्धिमान प्राणी मौजूद हैं। अगर तो जहा जो भी ग्रह नक्षत्र आदि हैं वे सबके सब नष्ट हो जाए अगर आरंभ मे शून्य था और उस शून्य से ही सबकुछ निकला था वही शून्य फिर आ जाए—तो न ज्ञान विज्ञान रहेगा, न प्राणी होगा और न कुतूहल।

लेकिन जबतक वैसा नही होता तबतक बुद्धिमान प्राणी भी है और उसकी ज्ञान पिपासा भी।

मनुष्य की यही ज्ञान पिपासा यही कुतूहल अपने आसपास और उस के परे हर चीज का रहस्य भेदने को आरंभ से ही तत्पर रहा।

जानने के क्रम मे कोई भी व्यक्ति पहले से चले आते ज्ञान के संबध मे जानने का प्रयास करता है। चूकि बुद्धिमान मन तार्किक होता है किसी भी तर्कविहीन बात को वह नही मानता, इसलिए जो बातें उसे तर्कसंगत लगती हैं उन्हें स्वीकार कर लेता है और जो बातें तर्क की कसौटी पर लौकिक की कसौटी पर खरी नही उतरती उन्हें अस्वीकार कर देता है।

जब पहल-पहल आदमी ने अपने चारो ओर देखा होगा तो उसे आश्चर्यमिश्रित हर्ष हुआ होगा। फिर उसने हर कुछ को जानने-समझने चेष्टा की होगी। जो पास है उसका रहस्य भी जानने की चेष्टा की

होगी, जो दूर है उसके सबध मे भी उसे उत्सुकता हुई होगी और जो सामने नही उसके सबध मे उसके अदर अनुमान पैदा हुआ होगा। जो है, क्यो है ? यह प्रश्न भी उसके अन्दर उठा होगा। जो सामने नही है वह कैसा है ? यह भी उसने पूछा होगा। उसने जन्म देखा होगा तो मृत्यु भी देखी होगी। जीवन की प्रवत्ति, जीते जाने, जीते रहने की उसकी इच्छा ने उसे इस बात का स्वीकार न नही दिया होगा कि मृत्यु के साथ प्राणी का अत हो जाता है। उसने न सिर्फ यह सोचा होगा कि मृत्यु क्यो होती है, बल्कि यह भी सोचा होगा कि जन्म क्यों होता है और यह भी कि मृत्यु के बाद कुछ होता होगा। यह कुछ कैसा होगा इस सबध मे भी उसने कल्पना की होगी।

इस सबध मे उस समय के विचारको ने जो सोचा होगा वह मनुष्य की पहली फिलॉसफी, पहला दर्शन बना होगा।

जैसे जैसे मनुष्य अधिक-से अधिक सीखता गया होगा, उसकी भाषा मे नए नए शब्द बनते गए होंगे, उसका अपने परिवेश का ज्ञान बढता गया होगा, वैसे-वैसे सृष्टि और उसके परे के सबध मे उसका चिन्तन बढता गया होगा, नए-नए अनुमान बनते गए होगे। इस तरह उसके दर्शन के ज्ञान मे वृद्धि होती गई होगी।

हर अगला विचारक पहले से चले आते विचारो को जानता होगा, उनकी तार्किकता-अतार्किकता की बात सोचता होगा और अपने नए चिन्तन तथा तर्क के बल पर नया दर्शन बनाता गया होगा।

सृष्टि हुई क्यो का उत्तर वह खोज नही पाया होगा लेकिन खोजे बगर उसे शान्ति भी नही मिली होगी। अगर कुछ है तो उसके लिए न सिर्फ कच्ची सामग्री चाहिए बल्कि उसका बनाने वाला भी होना चाहिए, यह उसका अनुभव था। तो जब सृष्टि है, ग्रह नक्षत्र, तारे, आसमान आदि है तो अवश्य इनका बनाने वाला भी होगा। इस बनाने वाले के अपने अनुमान का नाम उसने ईश्वर दिया। अगर उसके मन मे आया भी होगा कि अगर हर कुछ का बनाने वाला भी होगा तो ईश्वर का भी बनाने वाला भी होना चाहिए फिर उसका भी बनाने वाला और उसका भी । यहा पहुच कर उसकी बुद्धि हार गई होगी और उसने कहा होगा—नही ईश्वर स्वय का बनाने वाला है, वह अनादि है। उसके लिए किसी बनाने वाले की आवश्यकता नही। इसे चाहे उसकी तर्कशक्ति की हार मान लीजिए या थककर विश्राम करने की इच्छा, यहा आकर उसने अपने आपको शान्त अनुभव किया होगा।

चूकि वह आदमी था जो पहले बच्चा था जिसने देखा था, पिता कितना

शक्तिशाली था, कितना बडा, इसलिए उसने अपनी कल्पना के ईश्वर को पिता का प्रतिरूप समझा होगा जो अनन्त शक्तियो का पुज था। कहा है– ईश्वर ने अपने रूप म आदमी को गढा। जबकि सत्य यह है कि मनुष्य ने अपने रूप मे ईश्वर को गढा। न उसे उसमें सिर्फ सृष्टिकर्ता माना बल्कि सवत्र, सवव्यापी सवशक्तिमान भी मान लिया।

अस्तित्व के सम्पूण रहस्य को जानने का प्रयास दशनशास्त्र हुए और भिन्न भिन्न विचारको की पहले की मान्यताओ से प्रभावित और अपने चिन्तन से उदभूत विचारो से भिन्न भिन्न दशन बने। हर नए दार्शनिक ने पहले के दार्शनिक सिद्धान्तो को तक पर परखने की कोशिश की, जो सही लगा उसे ग्रहण किया जो तक-विरुद्ध लगा उसे त्याग दिया और नए अनु मान, नए सिद्धान्त और नए तक दिए।

शरीर मे मन है और मन और शरीर साथ मिलकर काम करते हैं यह प्रत्यक्ष ज्ञान की चीज थी, लेकिन शरीर के मर जाने से मन मर नही जाता एसा अधिकतर ने सोचा क्योकि शरीर के साथ आ दमी का अस्तित्व पूणत समाप्त होने की बात उनकी इच्छाओ को अच्छी नही लगती थी। इसलिए उसने एक आत्मा का आविष्कार किया जिसके सबध मे यह अनुमान किया कि यह ईश्वर अर्थात परमात्मा का अश है, अमर है और समय समय पर शरीर धारण कर पथ्वी पर आता है। शरीर मरता ही है, इसस वह इन्कार नही कर सका। इसलिए उसे कहना पडा कि जसे आदमी एक कपडा छोडकर दूसरा कपडा धारण कर लेता है उसी तरह आत्मा एक शरीर को छोडकर दूसरा शरीर धारण कर लेता है। हिन्दुओ का पुनजन्म इसी अनु मान पर बना कि आत्मा जन्म लेता ही रहता है।

लेकिन आदमी ने देखा कि शरीर—जीवित शरीर—के साथ सिफ सुख ही नही दु ख भी है, तो अगर आत्मा बार-बार अनन्त काल तक जन्म लेता रहेगा तो दु ख की सभावना तो बनी ही रहेगी। और दु ख अच्छी चीज नही यह कहने की जरूरत नही। इसलिए उसने मोक्ष की कल्पना की। यानी आत्मा कुछ ऐसा कर सकता है जिससे बार बार उसका जन्म लेना बद हो जाए।

चूकि व्यक्ति अकेला नही था वह समाज मे रहने को बाध्य था इस लिए उसके आचरणो से अन्य व्यक्तियो पर प्रभाव पडना अनिवाय था। उसके जिस आचरण से औरो को हानि होती थी अथवा औरो का लाभ होता था उसे चाहे तो निर्दोष अथवा पुण्य, अतएव कतव्य माना गया और जिससे औरो की हानि होती थी उसे पाप अत अकतव्य माना गया। इस तरह समाजशास्त्र, व्यवहारशास्त्र, नैतिकता और धम का जन्म हुआ।

बुरे काम के लिए सजा, और अच्छे काम के लिए पुरस्कार अच्छे उपाय हैं यह आदमी जान चुका था। इसलिए पाप की सजा और पुण्य के पुरस्कार का सिद्धान्त बनाया गया। अगर आवागमन दुख का कारण होता है तो इस जन्म के पाप के कारण वह होता रहेगा और पुण्य से वह समाप्त हो सकेगा ऐसा उसने सोचा।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त के पीछे एक और मनोविज्ञान काम कर रहा था। व्यक्ति तो ऐतिहासिक कारणों से सुखी-सपन्न घर मे पैदा होता था, स्वस्थ पैदा होता था या विपन्न, दुखी घर मे पैदा होता था, अस्वस्थ पैदा होता था। यह हमेशा से ऐसा ही होना आया है और हमेशा ऐसा ही होता जाएगा। अगर यह सिद्धान्त माना जाता कि ईश्वर की सृष्टि मे कहीं अन्याय नहीं, हर कुछ अपने ही किए का फल है तब यह बडी मुश्किल बात थी कि जो शिशु अभी अभी पैदा हुआ है उसे तो कर्म करने का मौका ही नहीं मिला है। फिर वह अच्छे घर मे स्वस्थ होकर पैदा होने का पुरस्कार क्यो पाता है? या बुरे घर मे अस्वस्थ होकर पैदा होने का दड क्यो पाता है?

इसका अच्छा उत्तर मिला इस सिद्धान्त से कि वह तो पहले भी था, चाहे मनुष्य रूप मे नहीं तो कीडे-मकोडे पशु पक्षी के रूप मे। और हर पहले जन्म के कर्मों का फल उसे अगले जन्म मे भोगना पडता है। सो, बस एक बात से सारे प्रश्नों का उत्तर मिल गया, लोग सन्तुष्ट हो गए और सपन्न लोगो से विपन्न लोगों की ईर्ष्या करने उनके अन्यायो अत्याचारो के विरुद्ध विद्रोह करने की बात भी समाप्त हो गई।

इतना ही नहीं, अगर उसने यह देखा कि कोई तो हर तरह के अन्याय अत्याचार तथा बुरे, असामाजिक कर्म करता हुआ भी सुखी है जबकि दूसरा अच्छा काम करते हुए भी दुखी है तो कहा गया दोनो को उनके बुरे और अच्छे कर्मों के फल अगले जन्म मे मिलेंगे। यह लोगो को भुलाने का एक अच्छा उपाय बन गया।

एक ढेले से दो शिकार हो गए

यह तो हुई हिन्दुओ की बात। ईसाई मुसलमान आदि ने माना कि आत्मा है यह मनुष्य के रूप मे जन्म लेता है और अगर वह ईश्वर पर विश्वास रखता है उसकी भक्ति करता है उसके पैगबरो के बताए मार्ग पर चलता है तो वह उम्मीद कर सकता है कि मरने के बाद जब कयामत आएगी फैसले का दिन आएगा तो ईश्वर उसे स्वर्ग या नरक देगा या अनन्त जीवन प्रदान करेगा क्योकि माना जाता है कि ईश्वर को अच्छे काम पसन्द है, बुरे काम नापसन्द है। वैसे तो हर कुछ उसकी इच्छा पर निर्भर है। उसकी इच्छा के बगैर एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। इसलिए अगर वह

अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा फल दे दे तो यह उसकी मर्जी, कोई उसे रोक नहीं सकता। कोई उसे बुरा नहीं कह सकता। क्योंकि वह ईश्वर है।

विभिन्न धर्मसंस्थापकों और दार्शनिकों ने सृष्टि और इसके रहस्यों के बारे में जो विचार किए जो काफी एक-दूसरे के विरोधी हैं, वे विभिन्न धर्म तथा दर्शन बने।

योगदर्शन भी उन्हीं में है। वैसे तो महाभारत के अनुसार कृष्ण से योग का आरंभ माना जाता है (और उससे भी पहले शिव से—क्योंकि हिन्दुओं की प्रायः हर मान्यता शिव से प्रारंभ हुई बताई जाती है, वह चाहे साहित्य हो, नृत्य हो, संगीत हो, कामशास्त्र हो या योग) लेकिन योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि माने जाते हैं। पतंजलि जीव और ईश्वर दोनों तत्वों को मानते थे। उनके पहले सांख्य ईश्वर तत्व को नहीं मानता था। पतंजलि के पहले हिरण्यगर्भ, याज्ञवल्क्य आदि योगशास्त्र के आचार्य हुए थे ऐसा माना जाता है। पतंजलि ने उसी योगशास्त्र को सूत्र-रूप में दिया इसलिए इसे पातंजल दर्शन भी कहते हैं।

सभी दार्शनिकों ने इतना तो अवश्य अनुभव किया था कि अन्तिम सत्य, आत्मा परमात्मा का रहस्य जानना असंभव है—इसलिए उपनिषद्कारों ने कहा था—नेति, नेति। इसकी इति नहीं, इस ज्ञान का जानने की चेष्टा का अन्त नहीं या यह नहीं, यह नहीं। लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि निरंतर चिंतन से ही शायद कभी अंतिम सत्य प्राप्त किया जा सके। इसलिए आत्मा के बारे में कहा था—आत्मा वा अरे मंतव्य श्रोतव्य निदिध्यासितव्य (हे मानव, आत्मा के स्वरूप का चिंतन करो उसकी पुकार सुनो, उसके ज्ञान को ही अपना लक्ष्य समझो)।

वेदान्तियों ने ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या कहा, उन्हें लगा, यह संसार सपने की तरह है, माया है इन सबके पीछे एकमात्र सत्य ब्रह्म है। बाकी हमारे अनुभव में आने वाला हर कुछ अच्छा भी बुरा भी पदार्थ भी, मन भी सिर्फ माया है आभासमात्र भ्रम है। ब्रह्म ही विश्व की मूल शक्ति है।

अगर यह सब हो तब तो हम जो भी करते हैं सब छलावा मात्र होगा। उससे पाप-पुण्य क्या होगा? बंधन और मोक्ष क्या मिलना? अगर सब ब्रह्म है, हम आप, सारा कुछ ब्रह्म है (सर्व खल्विदम् ब्रह्म, अहम् ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि) तो कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं। या आप जो भी करें उससे ब्रह्म का कुछ अन्तर नहीं पड़ेगा। जब सब अद्वैत है तो कर्म (प्राग कर्म) भी किसको प्रभावित करेगा?

फिर भी वेदान्ती ब्रह्म तथा अद्वैतवादी कर्म ईश्वर पर विश्वास, भक्ति तथा योग करने की राय देते हैं और उन्हें अपने इन सिद्धांतों में

विरोधाभास नजर नही आता ।

क्योंकि वे अपने बचपन के अनुकूलन (शिक्षा) से प्रभावित थे, इसलिए अपने दशन मे पहले से चले आए अनेक सिद्धान्तो को स्वयसिद्ध की तरह मानकर ही अनेक बार आगे बढने को विवश हो जाते थे । लेकिन फिर भी अधिकतर दार्शनिको ने जाना था कि अतिम सत्य जाना नही जा सकता—खासकर आत्मा के स्वरूप के सबध मे। तभी उन्होने हारकर कहा—आत्मा के बारे म निरतर चितन करते जाओ । शायद कभी उसे जान जाओ ।

और जिसको आत्मा के सत्य स्वरूप के दशन होते हैं वह उनकी मात्र कल्पना होती है जो उनके आत्मसम्मोहन का परिणाम होता है ।

पतजलि के योगसूत्र मे जो प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध होकर आत्मा का परमात्मा मे विलय होने, अथवा मोक्ष प्राप्त होने की बात कही गई है वह ऐसे ही अनुमान तथा आत्मसम्मोहन का परिणाम है ।

और बार-बार एक ही बात को कहते जाने, सुनते जाने से बडा से बडा असत्य भी सत्य लगने लगता है यह एक सामान्य राजनेता भी जानता है । हर विज्ञापनदाता इस सचाई को जानता है । मनोविज्ञानी, दाशनिक, धम-सस्थापक, धमप्रचारक आदि तो यह अच्छी तरह जानते ही हैं ।

तभी मत्र जाप, सत्सग मे बैठकर एक ही सिद्धान्त को बार बार सुनना बाइबल, कुरान, पुराण, धमशास्त्र आदि का निरतर स्वाध्याय, श्रवण आदि की आवश्यकता पर इसीलिए हमेशा बल दिया जाता है ।

हमे जो लाभ होता है उसका अधिकाश मनोवैज्ञानिक होता है । योग के लाभो का एक बडा हिस्सा शुद्ध मनोवैज्ञानिक है, लेकिन वह लाभ भी यथार्थ लाभ है, इसम सन्देह नहीं ।

अत आप हमारे सारे तर्कों से चाहे सहमत नहीं भी हो, आपको अन्य योगियो और विद्वानो द्वारा बताई गई योग के सबध की बातो पर ही चाहे विश्वास क्यो न हो आप योगाभ्यास अवश्य कीजिए—हठयोग भी राजयोग भी ।

आपको लाभ अवश्य होगा ।

योग के सिद्धान्तो की सचाई जानने के लिए दाशनिको का मनोविज्ञान जानना आवश्यक था, इसलिए मैंने यह अध्याय लिखा है ।

६
और अब योग का मनोविज्ञान

योग शरीर को स्वास्थ्य देता है।

योग मन को शान्ति देता है, आध्यात्मिक अनुभव देता है और अनंत मोक्ष का साधन बनता है।

अनेक योगियों का यह भी कहना है कि योग से सिद्धियां मिलती हैं। ऐसी सिद्धियों की संख्या आठ गिनाई गई है। ये अष्टसिद्धि निम्नलिखित मानी जाती हैं—अणिमा (योगी का इतना सूक्ष्म रूप धारण कर लेने की शक्ति कि वह अदृश्य हो जाए), महिमा (देह का जितना चाहे विस्तार कर लेने की शक्ति), गरिमा (शरीर का भार इच्छानुसार बढ़ा लेने की शक्ति) लघिमा (शरीर को यथेष्ट छोटा और हल्का बना लेने की शक्ति), प्राप्ति (हर अभीष्ट वस्तु को पा लेने की शक्ति) प्राकाम्य (ऐसी शक्ति कि योगी जो चाहे वह हो जाए) ईशित्व (दूसरों पर प्रभुत्व जमाने की शक्ति) और वशित्व (सम्मोहन अर्थात दूसरों को वश में करने की शक्ति)।

उच्चकोटि के योगियों का कहना है कि सिद्धि प्राप्त करने के लिए योगाभ्यास निम्न कोटि का ही समझा जाएगा। उनके अनुसार सिद्धियां, यानी तरह-तरह के चामत्कारिक काम कर सकने की शक्ति पाकर आदमी अपने सांसारिक उद्देश्यों की पूर्ति तो कर सकता है, लोगों को चमत्कृत तो कर सकता है लेकिन योग का अन्तिम लक्ष्य तो निर्विकल्प समाधि के द्वारा मोक्ष प्राप्त करना है और सिद्धियाँ उस मार्ग में बाधा ही बन सकती हैं उसे प्रशस्त नहीं कर सकतीं इसलिए सिद्धियों का लाभ कभी नहीं करना चाहिए।

यह बात बहुत महत्त्व है कि क्या योग से उपर्युक्त प्रकार की सिद्धियां मिल जाती हैं ? पौराणिक युग में सिद्ध योगी हुआ करते थे और वे हवा में उड़ जाते थे, ज़हर खा लेते थे, पानी पर पैदल चल लेते थे

इतने भारी हो जाते थे कि दस-बीस आदमी भी उन्हें अपने आसन से हिला नही सकते थे आदि की कहानिया पौराणिक साहित्य मे प्रचुरता से मिलती हैं। लेकिन हमने अपने जीवनकाल मे किसी सिद्धि प्राप्त योगी को नही देखा और जब कभी किसी योगी ने अधर मे बगैर आधार उठने, अथवा पानी पर पैदल चलने का करतब दिखाने की कोशिश की तो उसे असफलता ही मिली, ऐसी खबरें काफी पढी।

रही बात प्राप्ति, ईशित्व और वशित्व की तो ये सिद्धिया पाए कई लोगो के बारे मे आम चर्चा होती रहती है। प्राप्ति यानी हर अभीष्ट वस्तु को वह योगी पा लेता है जो बडे-बडे पूजीपतियो और राजनेताओ को प्रभावित कर सकता है। ऐसे सिद्ध योगियो को दस-बीस लाख के हवाई जहाज, लाखो के महल आदि हर कुछ उनके सपन्न और सक्षम भक्त उन्हें दे देते हैं। वशित्व तो सम्मोहन है ही, यह एक विद्या है, विज्ञान है और हमारे जैसे मानसचिकित्सक भी इसकी शिक्षा पाए होते हैं, और इसका प्रयोग भी करते हैं। रही बात किसी योगी मे इस शक्ति के होने की, तो उसके व्यक्तित्व और उसके व्यक्तित्व के प्रभाव और इन किंवदतियों के प्रभाव कि वह आदमी को मनोवाछित फल दिलाने मे सक्षम है, के कारण उसके पास आने वाले व्यक्ति स्वय सम्मोहन की अवस्था मे पहुच जाते हैं। अगर इस तरह के सम्मोहन की शक्ति (वशित्व) उनकी ख्याति तथा व्यक्तित्व मे नही होती तो बडे-बडे लोग योगियों और तान्त्रिकों के दरवाजो पर मत्था नही टेकते होते और न हर भौतिक सुख के साधन उनकी सेवा में अर्पित करते होते।

अगर योग के द्वारा इन सिद्धियो को पाना मानें तो ये तो प्रत्यक्ष हैं। लेकिन यह कमाल योग का नही होता, होता है प्रचार का, अपने आपको लोगो के सामने पेश करने के तरीके का, अपने शिष्यों के अथक प्रयास का।

शायद असली योगी इन बातों को जानते थे तभी उन्होंने कहा कि कोई सिर्फ सिद्धि प्राप्त करने के लिए कभी योगाभ्यास नहीं करे, अगर योग के क्रम मे ये मिल भी जाए तो उन्हें भूल जाए और मोक्ष के मार्ग पर निरन्तर बढ़ता जाए।

तो योग शरीर और मन को आदर्श स्वास्थ्य और शान्ति देता है, इतना तो निर्विवाद है। साथ ही आपकी अपनी दार्शनिक, धार्मिक अथवा आध्यात्मिक धारणाओ के अनुसार उसके द्वारा आपको मृत्युभय से छुटकारा मिल सकता है, शाश्वत आनन्द मिल सकता है, अनन्त जीवन मिल सकता है आवागमन से छुटकारा मिल सकता है, मोक्ष मिल सकता है।

हम यहां यह समझने की चेष्टा करेंगे कि योग किस तरह शारीरिक

स्वास्थ्य देता है, रोगो से छुटकारा दिलाता है और किस तरह मानसिक तनावो, उलझनो, भयो, द्वन्द्वो और रोगो का निवारण कर हमे शान्ति देता है, आनन्द देता है और इस योग्य बनाता है कि जबतक जीए आनन्दपूर्वक जीए और मरें तो हर सभव दुख से मुक्त हो जाएं।

यह समझना ही योग का मनोविज्ञान समझना होगा।

शरीर का स्वस्थ अथवा अस्वस्थ होना उसका गुण है। कुछ विशष प्रकार की परिस्थितिया रहें तो शरीर स्वस्थ रहेगा, अन्य कुछ तरह की परिस्थितिया में वह अस्वस्थ हो जाएगा शरीर को हवा की आवश्यकता है भोजन की आवश्यकता है, पानी की आवश्यकता है, ऊष्मा की आवश्यकता है, सेक्स की आवश्यकता है आदि। समुचित रूप मे ये आवश्यकताए पूरी होती रहे तो शरीर स्वस्थ रूप मे काम करता जाएगा। काम करने के लिए उसके अदर विशेष प्रकारो के तनावो की आवश्यकता है। जो तनाव काम करके समाप्त हो जाए वे शरीर को स्वस्थ रखेंगे। लेकिन तनाव ता हो पर जिस काम के लिए वह पैदा हुआ हो उस पर वह खच नही हो तो ऐसे तनाव के लिए शरीर की स्नायविक, पेशीय और ग्रथिजन्य ऊर्जा चाहे तो अन्य मार्गों पर जाकर अथवा उन स्नायुओ, पेशियो तथा ग्रथियो म ही रहकर जहा से वह निकली थी उन्हें हानि पहुचाती है।

अनुभव बताता है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए यह अनिवाय है कि न तो वह उचित से अधिक स्थिर रहे और न उचित से अधिक काम कर। किस शरीर के लिए क्या उचित मात्रा है यह प्रकृति ने उसकी बनावट और भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियो के अनुसार तय किया होता है।

दुर्भाग्य से हममे से अधिक अपने दैनन्दिन कामो मे इस तरह उलझ होते है कि जिस शरीर के बल पर ही हमारा हरकाम सपादित होता है उसकी समुचित देख भाल नही कर पात। अत हमे इसक बिगडे हुए सतुलन को बनाए रखने के लिए जानबूझ कर प्रयास करना पडता है। हर तरह का व्यायाम इसी प्रयास का अग होता है। हठयोग अपनी तरह का व्यायाम है और यह कुछ क्रियाओ प्राणायाम तथा आसना क द्वारा शरीर का पूणत स्वस्थ बनाने की क्षमता रखता है।

यारोपीय व्यायामा मे शरीर का तीव्रगति देकर रक्त सचार बढान तथा पशियो का सबल बनाने का प्रयास है। अनुभव बताता है कि जिन पशिया का जितनी सक्रियता मिलती है उनका उसी मात्रा म विकास होता है। भारतीय तथा अन्य पूर्वी देशा म भी इस सिद्धान्त को माना जाता रहा है।

लेकिन विशेष विशेष स्थिति मे शरीर का कुछ-कुछ देर तक पूरी तरह

स्थिर रखकर उसे पुष्ट श्रौर स्वस्थ बनाया जा सकता है यह श्राविष्कार भारत के विद्वानो का ही है। यह श्राविष्कार कैसे हुश्रा इसका वर्णन कही नही मिलता। लेकिन इतना श्रनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि विज्ञान के साधन, निरीक्षण तथा परीक्षण ही इनके श्राधार रहे होंगे।

श्रभी कुछ वर्ष पहले योरोपीय शरीरक्रिया विज्ञानी भी इसी परिणाम पर पहुचे हैं। कुछ विज्ञानी प्राणी की पेशियों पर निश्चलता श्रौर गतिशीलता का श्रध्ययन कर रहे थे। उन्होने एक मेढ़क की एक टाग को मेज पर बाध कर श्रचल कर दिया श्रौर बाकी तीन टागो को मुक्त छोड दिया मेढक श्रपने को छुडाने के लिए छटपटाता। लेकिन बधी टाग तो हिल नहीं पाती, वह सिर्फ बीच-बीच मे कुछ कुछ देर तक के लिए तन कर रह जाती, जबकि तीनो मुक्त टागें बराबर हिलती रहती, गतिशील रहती।

प्रयोगकर्त्ताश्रो का श्रनुमान था कि काफी समय तक इसी स्थिति मे रहने से बधी टाग तो कमजोर हो जाएगी, उसकी पेशियो मे ह्रास दीखेगा, जबकि गतिशील टागों की पेशिया मजबूत हो जाएगी।

लेकिन जब मेढक को खोला गया तो परिणाम उल्टा ही मिला—खुली टागें ज्यो की-त्यो रह गई थी श्रौर बधी टाग की पेशियाँ पहले से श्रधिक पुष्ट श्रौर मजबूत हो गई थी! प्रयोगकर्ता श्राश्चयचकित हो गए। इस पर इस तरह के श्रनेक प्रयोग किए गए श्रौर इस नतीजे पर पहुचे कि श्रगर किसी पेशी-समूह को कुछ देर तक तानकर रखा जाए तो ऐसा करना उसे तीव्र गति देने की श्रपेक्षा श्रधिक पुष्ट करता है।

श्रनेकानेक प्रयोगो से पेशियो को कितनी देर तानकर उसी स्थिति मे श्रचल रखा जाए ताकि सर्वाधिक लाभ हो इसका भी पता लगाया गया। पाया यह गया कि किसी भी पेशी-समूह (श्रथवा श्रग) को सात सेकड तक तान कर उसी स्थिति मे श्रचल रखने से सबसे श्रधिक लाभ होता है। दूसरी भाषा म हम यह कह सकते हैं कि योग के किसी श्रासन म श्रगर हम सात सेकड तक रह तो उससे जिन श्रगो पर तनाव पडता है (जिनका सकुचन श्रौर प्रसारण होता है) उनको सर्वाधिक लाभ होगा, श्रगर हम सात सेकड की जगह सताइस सेकड या सात मिनट उसी श्रासन को करे तो रत्ती बराबर श्रधिक लाभ नही होगा।

इसे सममितीय (श्राइसामेट्रिक) सिद्धात कहते हैं—यानी पेशियो के सकुचन तथा प्रसारण पर समान रूप से तनाव पडना।

हमारे योगी श्राइसोमेट्रिक्स के इस सिद्धात पर तो नही पहुचे थे, लेकिन श्रपने श्रगो को तनाव की एक ही स्थिति मे कुछ देर रखने स उन्हे तेज गति म डालने की श्रपेक्षा श्रधिक लाभ होता है वे यह समझ सके थे।

और जब यह तथ्य उनके हाथ मे आया तो उन्होंने सामान्य तक के बल पर यह सोचा कि जितनी अधिक देर एक आसन में रहा जाए लाभ उतना ही अधिक होगा। इसलिए अधिकांश योगी तथा योग के ग्रन्थ एक-एक आसन मे कम से-कम दस-पन्द्रह मिनट तो अवश्य और हो सके तो आधा आधा घण्टे तक रहने की राय देते हैं। हमने एकाध योग की पुस्तक मे पढा है कि शीर्षासन तक में कम-से-कम आधा घण्टा तो रहना ही चाहिए, नही तो इससे कुछ लाभ नही होता। अगर हो सके तो घण्टे-दो घण्टे तक इस आसन मे रहने का अभ्यास किया जाये।

जैसाकि हमने अभी कहा है, हर योगासन का अधिकतम लाभ उसमे सात सेकड रहने मे होता है और अब काफी योगी सात आठ सेकड की ही राय देते हैं। आप एक ही आसन मे एक मिनट रहने की बजाए अगर सात सात सेकड के मध्य थोडा अवकाश देकर उतनी देर मे। कई बार वह आसन करे तो आपको ज्यादा फायदा होगा। हा, कुछ आसन ऐसे हैं जिनमे आध मिनट से लेकर दस मिनट तक रहने की सलाह दी जा सकती है, लेकिन उसका कारण कुछ और है जो हम यथास्थान बतायेगे।

हा, जिन्ह गह त्याग कर पूरी तरह से योगी बन जाना है वे अपने शरीर और मन के साथ बेशक हठ के खेल करते रहे, उन्ह कोई मना नही कर सकता। साधारण गृहस्थी को अपने मन और शरीर का स्वास्थ्य बनाने और बनाए रखने के लिए दिन रात मे एकाध घण्टा समय भी मिल जाए तो बहुत है। उसे अन्य अनेक काम करने रहते हैं, अनेक जिम्मेदारियाँ उठानी होती हैं। अपने परिवार के सदस्यो, मित्रो, सहकर्मियो आदि के बीच रहकर, काम, उद्योग व्यवसाय, साहित्य, सगीत, कला आदि मे व्यस्त रहकर उसे ऊबने का समय कम ही मिलता है। जबकि जिस व्यक्ति को कुछ भी काम नही हो, न अपने लिए कुछ कमाने की आवश्यकता हो, न किसी से मिलने मिलाने की जिसे सिर्फ अपने आध्यात्मिक विकास और पूर्ण योगी बन जाने की ही धुन हो। अगर वह योगाभ्यास मे ही सारा समय नही लगावे तो एक ओर जहा अपना ध्येय प्राप्त नहीं कर सकेगा वही वह बुरी तरह बोर भी होगा ऊबेगा भी। तो अगर ऐसा व्यक्ति चौबीस में चार-चार आठ आठ घटे योगासन ही करता रहे तो क्या हर्ज है? बल्कि उसके लिए वही अच्छा है। रही बात कि क्या इतनी इतनी देर तक आसन स्वास्थ्य करके उसे अधिक लाभ होता है की, तो अनुभव बताता है कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिहाज से ऐसा नही होता हा, आत्मसम्मोहन के कारण उसे तथाकथित आध्यात्मिक और अलौकिक अनुभवो मे वद्धि जरूर मिलती है।

ऊपर हम सिद्धियो के यथार्थ की बात कह आये हैं, यहा उस सबध मे एक और बात कहना समुचित होगा।

हम अपने बाह्‌री ससार के विषय मे सारा ज्ञान अपनी ज्ञानेन्द्रिया के माध्यम से ही पाते हैं। मनुष्य की ज्ञानेन्द्रिया पाच हैं—आखें, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा। आखो से हम देखते हैं, कानो से सुनते हैं, नाक से गध लेते हैं, जिह्वा से स्वाद ग्रहण करते हैं और त्वचा अर्थात् चमडी से स्पश का ज्ञान होता है। ये सारी ज्ञानेन्द्रिया विभिन्न नाडियो के द्वारा (जो सवेदन नाडिया कहलाती हैं) हमारे मस्तिष्क से (जो हमारे सर की खोपडी के अदर अवस्थित है) विभिन्न केन्द्रो से जुडी हुई हैं। ज्ञानेन्द्रियो को बाह्‌री दुनिया से जो सवेदन मिलते हैं (जैसे आखो से चित्र, कानो से ध्वनि तरगें आदि)वे प्रेरणा तरगो के रूप मे उनसे जुडी नाडियो के द्वारा मस्तिष्क के अपने अपने विशेष केन्द्रो मे पहुचाए जाते हैं जहा वे उस विशेष वस्तु के अनुभव अथवा ज्ञान के रूप मे जाने जाते हैं। देखने के सवेदन मस्तिष्क के दृष्टि केन्द्र मे पहुचकर चित्रो के रूप मे हमे दिखलाई देने का ज्ञान देते हैं, कानो मे गई ध्वनि तरगें श्रुति केन्द्र मे पहुचकर सुनाई पडने का ज्ञान देती हैं। अगर ज्ञानेन्द्रिया तो सवेदन ग्रहण करें और किसी कारण उनसे सबद्ध नाडिया उनकी प्रेरणा मस्तिष्क केन्द्र तक नही पहुचा पाए तो उन का ज्ञान हमे नही होगा। अथवा नाडिया समुचित केन्द्रो मे सवेदन तो पहुचा दें लेकिन किसी कारण मस्तिष्क के केन्द्र उन्हें ग्रहण करने अथवा उनका अर्थ समझने के अयोग्य हो (जैसे नीद, नशे अथवा बेहोशी आदि मे)तो हमे उनकी जानकारी नही होगी।

इस तरह हम देखते हैं कि किसी भी बाह्य वस्तु का ज्ञान (और सही ज्ञान) होने के लिए अनिवार्य है कि हमारी ज्ञानेन्द्रिया सवेदन, नाडिया तथा मस्तिष्क के केन्द्र स्वस्थ और समुचित रूप मे परस्पर सहयोग करें। अगर इस सहयोग मे कही भी बाधा पडी, गडबडी हुई, तो चाहे तो ज्ञान ही नही होगा अथवा गलत ज्ञान होने की सभावना होगी भ्रम और भ्रान्तिया होगी।

चूकि हम हमेशा पाच ही ज्ञानेन्द्रिया होने की बात कहते और मानते आए है इसलिए अगर कभी किसी को इनके अलावा किसी और तरह से किसी ज्ञान के होने की बात करते देखते हैं तो हमे आश्चय होता है। जैसे अगर आप बगैर उसके बताए उसके मन की बात जान जाए या आप कही दूर बैठे व्यक्ति (जैसे आप तो राची मे हो और दूसरा हैदराबाद या लदन मे) के मन की बात जानकर बता देते हैं तो इसे अलौकिक शक्ति या चमत्कार छोड़ आप और कुछ नही कह सकते। उसी तरह अपनी आंखों से

आभास, अथवा दूर की चीजों को आप देखें तो यह भी चमत्कार ही माना जाएगा। अगर किसी को जन्म से ही ऐसे अनुभवों अथवा ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति हो तो उसे असामान्य कहा जाएगा और अगर योग जैसी साधना से ऐसी शक्तियां मिली हों तो उन्हें योग की सिद्धियों के नाम दिए जाएंगे।

ऐसे अनुभवों को विज्ञान संवेदनातीत अनुभव (E S P अथवा Extra Sensory Perception) का नाम देता है। इसका अर्थ हुआ पांचों ज्ञानेंद्रियों के अतिरिक्त (किसी अन्य साधन द्वारा) अनुभव अथवा ज्ञान प्राप्त होना। कई लोग इसे छठी इंद्रिय भी कहते हैं। बगैर बोले किसी पास या दूर के व्यक्ति को अपनी बात कह देना अथवा उसकी बात सुन लेना दूरबोध या टेलिपैथी कहलाता है।

कई लोगों में संवेदनातीत अनुभव (E S P) अथवा टेलिपैथी की शक्ति होती है, यह एक माना हुआ वैज्ञानिक तथ्य है। इसमें चमत्कार की कोई बात नहीं। अब तो पनडुब्बियों (सबमेरीन) से धरती का संबंध टेलिपैथी शक्ति संपन्न व्यक्तियों के द्वारा रखने के प्रयोग हो रहे हैं क्योंकि पानी के अंदर की वस्तुओं के साथ बाहर का वायरलेस के द्वारा संकेत संप्रेषण संबंध संभव नहीं।

इसी तरह एक और शक्ति किसी किसी व्यक्ति में होती है जिसे मनोविज्ञान साइकोकाइनेसिस (संक्षेप में पी० के०) कहता है। यह शक्ति है बगैर किसी भी तरह के पेशीय दबाव के (किसी अंग के द्वारा बिना कोई गति दिए) किसी बाहरी वस्तु में परिवर्तन कर देने की। जैसे सिर्फ ध्यान से देखकर इच्छा के द्वारा, बगैर हाथ लगाए, सामने टेबुल पर रखे चम्मच को अपने स्थान से हिला देना या लोहे के कांटे को टेढ़ा कर देना या घड़ी की सुइयों को हटा देना आदि। अभी टेलिपैथी अथवा टेलिकाइनेसिस की शक्तियां (पहली हजारों और दूसरी कुछ दजन व्यक्तियों में) थोड़ी-बहुत पाई जाती हैं, ये शक्तियां आदमी के अचेतन की होती हैं। इस हिस्से को हम चाहें तो पराचेतन (सुपरकॉशस) कह सकते हैं।

जिस किसी के अंदर पराचेतन अधिक विकसित और सक्रिय होता है वह बहुत अच्छा ज्योतिषी हो सकता है। फलित ज्योतिष कहां तक सच है, कितनी दूर तक वैज्ञानिक है यह अत्यंत विवादग्रस्त वस्तु है। लेकिन यह अनुभव की बात है कि अनेक ज्योतिषी सामने वाले के भूत और वर्तमान की बातें काफी दूर तक सही-सही बतला देते हैं जबकि उन्हीं ग्रह-नक्षत्रों की, उसी पद्धति की, गणनाओं के द्वारा बहुतेरे ज्योतिषी वे चीजें सही नहीं बता पाते। इसका कारण यह हो सकता है कि सही बतलाने वाले ज्योतिषी के अंदर टेलिपैथी की शक्ति काफी विकसित रूप में है (जिसका ज्ञान शायद

उसे स्वय भी नहीं हो) ग्रौर सामने वाले के बगैर बताए भी उसके ग्रदर से उसके भूत ग्रौर वतमान का इतिहास जान जाता हो, ग्रौर उसके मन मे उठते प्रश्नो ग्रादि को भी समझ जाता हो। ऐसे ज्योतिषियो के ग्रदर भी टेलिपैथी की शक्ति दिन-रात की किसी विशेष घडी मे ही काम करती है इसलिए वे उस घडी मे ही मिलना, कुडली, हाथ ग्रादि देखना पसन्द करते हैं।

ऐसे ज्योतिषियो के ऐसे 'चमत्कारी" करतबों के कारण लोग, जिनमे देश के प्रधानमत्री से लेकर राज्यों के सामान्य उपमत्री तक हो सकते हैं, बडे-बडे उद्योगपतियो, व्यवसायियो से लेकर साधारण दूकानदार तक हो सकते हैं, उच्चतम जजो ग्रौर ग्रफसरो से लेकर सामान्य ग्रोवरसियर ग्रौर क्लर्क तक हो सकते हैं, फलित ज्योतिष, हस्तरेखाशास्त्र, तत्र, मत्र ग्रादि पर ग्रध श्रद्धा रखने लगते हैं ग्रौर यहा तक मानने लगते हैं कि विशेष ग्रनुष्ठानो, पूजाग्रो ग्रादि के द्वारा ग्रपने भविष्य को बदला जा सकता है। यद्यपि बार-बार वे देखते हैं कि योग्यतम ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों में भी काफी गलत निकलती हैं, ग्रौर सबसे बडे ग्रौर खर्चीले ग्रनुष्ठानो से भी मनोवाछित फल प्राय नही मिलते, फिर भी उनका विश्वास नही डिगता ग्रौर यह कहकर वे ग्रपने ग्रापको ठगते हैं कि कही उनके ग्रपने ग्रदर ही श्रद्धा, ग्रास्था ग्रादि की कोई कमी रही होगी, इसीलिए ऐसा हुग्रा।

ग्रगर कोई व्यक्ति, चाहे वह समाज मे कितना बडा भी क्यो न हो, कितना भी पढा-लिखा क्यों न हो, ग्रपने ग्रापको धोखा देने पर कटिबद्ध ही हो तो ग्राप या हम या ज्ञान विज्ञान की बातें क्या कर सकती हैं ?

यहा एक प्रश्न उठ सकता है कि क्या पराचेतन की शक्ति प्रकृति की देन मात्र ही हो सकती है ? ग्रथवा व्यक्तिगत प्रयास के द्वारा इसे पैदा ग्रथवा विकसित भी किया जा सकता है।

ऐसा सोचा जा सकता है कि पराचेतन की शक्ति सभवत हर व्यक्ति मे हो। किसी-किसी मे तो वह जाग्रत ग्रथवा सक्रिय होती हो, ग्रथवा किसी विशेष कारण से ग्रचानक प्रकट हो जाती हो ग्रौर ग्रधिकाश लोगों मे वह सुषुप्तावस्था में रहती हो। दोनो ही प्रकार के लोग प्रयास के द्वारा इसे जागृत तथा विकसित कर सकते हैं ऐसी सभावना का ग्रनुमान भी लगाया जा सकता है।

सभवत योगियो ने इसका ग्रनुभव किया हो, तभी उन्होंने योग के द्वारा सिद्धि प्राप्ति की बात कही हो।

विकासवाद का सिद्धान्त डार्विन से ग्रारभ होकर ग्राज एक परम वैज्ञानिक सत्य माना जाता है। कहा जाता है, पृथ्वी पर, ग्रारभ में पहला

प्राणी एक सैल का अमीबा हुआ जो करोड़ों साल तक विकास करता हुआ तरह-तरह के कीट-पतगों, पशु पक्षियों आदि के रूप मे परिवर्तित होता गया। यहा तक कि आज तक के हुए विकास की उच्चतम सीढी मानवप्राणी तक वह आज से पद्रह-बीस लाख वर्ष पहले पहुच गया। विकास का यह क्रम आज भी उसी तरह चल रहा है और आगे भी हमेशा चलता रहेगा। आदमी महामानव होगा, महामानव से बढ़कर देवता होगा, देवता से बढ़ कर भगवान बनेगा।

यह सारा विकास हुआ कैसे ? इच्छा की शक्ति द्वारा। सृष्टि जब नही थी, जो था मात्र शून्य था तब आप-से-आप चेतना का जन्म हुआ हो अथवा शून्य मे ही चेतना रही हो। चेतना म इच्छा जगी होगी, इच्छा ने सृष्टि को जन्म दिया होगा, हजारो-लाखो ग्रह-नक्षत्र तो बने होंगे। इन्ही मे एक हमारी पृथ्वी भी रही होगी। इस पृथ्वी पर चेतना की इच्छाओ के कारण ही कभी अमीबा पैदा हुआ हो जिसके अदर भी इच्छा रही हो। उसने अमीबा से अलग, उससे बेहतर कुछ होने की इच्छा की हो। हजारो लाखो की इस इच्छा के फलस्वरूप उसके एक सैल से अनेक सैल हुए हो और वह अपने से बेहतर प्राणी बन गया हो। इसी तरह इच्छा के बल पर तैरने वाले प्राणी चलने वाले प्राणी, उड़ने वाले प्राणी बने होंगे। लेकिन हर अवस्था म और भी आगे बढने, कुछ और विकसित होने की इच्छा काम करती रही होगी। बन्दर की अवस्था मे आने के बाद भी अपने से बेहतर होने की इच्छा लाखो-लाख साल सक्रिय रही होगी जिसके फलस्वरूप वह आदमी बन गया होगा। यह गप्प नही वैज्ञानिक तथ्य है।

इच्छा के बल पर ही आदमी किसी दिन महामानव, देवता और भगवान भी बन जाएगा इसमे शक नही बशर्ते कि इसके पहले ही, अपने अदर की हिंसा की प्रवृत्ति के कारण, वह सारे ससार को ही न्यूक्लियर बमों और लेसर किरणो और विषैली गैसो और बीमारियो के कीटाणुओ आदि द्वारा समूल नष्ट न कर दे।

योग साधना मे, ध्यानयोग म, राजयोग मे, यही इच्छाशक्ति सर्वाधिक सक्रिय होती है। हम एक आसन मे लगातार बैठते हैं, चित्तवृत्तियो का निरोध करते है यानी मन के आवेशो और उसके इधर-उधर भागने पर पूरा नियत्रण कर पाते हैं फिर किसी विशेष बात पर, उद्देश्य पर अपनी इच्छा को अपने ध्यान को केंद्रित कर देते है। ऐसा हम निरन्तर बरसो करते जाते हैं। ऐसी स्थिति म इसमे क्या आश्चर्य है कि हमारा अचेतन, हमारा पराचेतन काफी हद तक हमारे अपने नियत्रण मे आ जाता हो ? और जब ऐसा हो जाता हो तो हम बहुत-कुछ ऐसा अनुभव कर सकते हैं जो सामान्य

स्थिति मे हमे नही होता—जैसे लगातार आनन्द मे स्थित होना, बगैर किसी सहभोगी के ब्रह्मानदस्वरूप रति आनन्द का अनुभव कर पाना, औरो के मन की अनेक बातें समझ जाना और स्वयप्रदत्त आदेशो के कारण मृत्यु के उपरान्त भी मोक्ष प्राप्त कर लेने का विश्वास हो जाना आदि।

सभवत आप लोगो मे से कुछ लोगों के मन मे यह प्रश्न उठ रहा हो कि अगर मेरी उपयुक्त बातें और सिद्धान्त सही हो तो क्या हमारे प्राचीन ऋषि मुनि योगी सन्यासी गलत थे? उन्होने इहलोक, परलोक, आत्मा, परमात्मा, जीवन मृत्यु योग इससे होने वाले लाभ, सिद्धिया आदि के सबध मे जो भी कहा सारा झूठ था?

मेरे कहने से तो ऐसा ही लगता है। लेकिन इससे आप यह परिणाम नही निकालें कि मैं कहना चाहता हू कि वे झूठे थे—यद्यपि हो सकता है कि उनकी अनेक मान्यताए झूठी प्रतीत हो रही हो। झूठा उसे कहते हैं जो यह जानते हुए कि अमुक बात गलत है उसे सच की तरह कहता है। हमारे विचारक, दार्शनिक, ऋषि मुनि विद्वान इस अर्थ मे कदापि झूठे नहीं थे। उन्होने अपने ढग पर विचार किया था और उन्हे जो सच लगा था वही कहा था। मैंने सर्वथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, प्रकृति के जिन रहस्यो को हम समझ सके हैं, उनमे हमे जिन नियमो सिद्धान्तो का ज्ञान हुआ है उसके बल पर, आत्मा परमात्मा, जीवन मृत्यु इहलोक-परलोक, योग और इसके प्रभाव आदि के सबध मे व्याख्या करने की कोशिश की है।

हा, इतना कहा जा सकता है कि हमारे अनेक कवि, लेखक तथा विचारक अनेक समय अतिशयोक्ति से काम लेते थे। जैसे वाल्मीकीय रामायण मे लिखा है कि जब महाराज दशरथ साढे ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य कर चुके तो उन्होंने सोचा कि अब उन्हे राम को राज्य देकर सन्यास ले लेना चाहिए। (लेकिन साढे ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करने वाले राजा के लिए सिर्फ चौदह वर्ष—जो हमारे जैसे ज्यादा-से-ज्यादा सौ साल जीने वाले आदमियो के लिए चाहे बहुत बडा समय हो दस-बीस हजार वर्ष जीने वाले आदमी के लिए हमारे घण्टे भर से भी कम समय हो—अपने लडके को जगल भेजना इतना साघातिक लगा कि उन्होंने प्राण ही दे दिया!) इसी तरह वन से लौटकर राम सिहासन पर बैठने के बाद जब दाई हजार वर्षों तक राज्य कर चुके उसके बाद ही उन्होंने ससार-त्याग किया। ऋषियो मुनियों द्वारा हजारो साल तपस्या करने की कहानिया सारे पौराणिक साहित्य में भरी पडी हैं। जब आप भक्तिपूर्वक ऐसी कहानियो को सुनते हैं तो न तो आपको इनके विश्लेषण की प्रवृत्ति होती है और न आप कभी सोचते भी हैं कि ये गलत भी हो सकती हैं। लेकिन सारे हिन्दू मानते हैं कि

उनका आदि ज्ञान ग्रथ वेद हैं और दशरथ, राम, कृष्ण, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि सारे पौराणिक चरित्र वेदो के बाद के ही हैं। आज के अधिकतर विद्वान वेदो की आयु चार-साढे चार हजार वर्षों से अधिक नही मानते। इसी वेद मे दीर्घायु की कामना जीवेत शरद शतम् यानी सौ साल तक जीए कहकर की जाती है। अगर यह सच हो तो उपयुक्त सारे लोग गत चार-साढे चार हजार वर्षों के अदर ही हुए होगे। फिर दशरथ के साढे विश्वामित्र ग्यारह हजार और राम के ढाई हजार वर्ष राज्य करने की बात अथवा के हजारो साल तपस्या करने की बात कहा तक सच हो सकती है ?

ऐसी स्थिति मे काव्यकारो और पौराणिको की, समय के सबध मे, अतिशयोक्ति छोड आप और क्या कह सकते हैं।

जैसे उन्होने काल के सबध मे अतिशयोक्ति से काम लिया है सभवत वैसा ही योग के लाभो के सबध मे भी किया हो ऐसा सोचा जा सकता है।

□

हमने ऊपर अपनी ज्ञानेद्रियो की चर्चा की है। इन्ही इद्रियो के कारण हमे बाह्य ससार का ज्ञान प्राप्त होता है। उसी तरह हमारे पाच कर्मेद्रिया हैं जिनके द्वारा हम कोई भी काम करते हैं। ये हैं हाथ पाव, जिह्वा, गुदा और उपस्थ। इन सबमे पेशिया भरी पडी हैं जो क्रियानाडियो द्वारा मस्तिष्क से सयुक्त हैं। ये क्रियानाडिया जिस किसी पेशी अथवा पेशीसमूह को काम की प्रेरणा देती हैं वे अपने अपने ढग पर हरकत करती हैं। क्रियानाडिया दो प्रकार की होती हैं—एक ऐच्छिक, दूसरी अनैच्छिक अथवा स्वत क्रिय। ऐच्छिक नाडियो द्वारा हम उन पेशियो को चला सकते हैं जिन्हें हम चाहते हैं, यद्यपि कुछ भी करते हुए न तो उन नाडियो का हमे ज्ञान होता है और न पेशियों का। हम अपने आपको कहते हैं कि दाहिना हाथ ऊपर उठाओ या बाए हाथ की तीसरी उगली टेढी करो आदि, और ऐसा हो जाता है। हम यह बात न तो नाडियों को कहते हैं न पेशियो को। हमारे मस्तिष्क मे ये केन्द्र हमारे हर काम मे आदेश देते हैं जो इनका नियत्रण करते हैं।

स्वत क्रिय नाडिया हमारी उन पेशियो को प्रभावित करती हैं जिनकी गतिशीलता शरीर का समुचित रूप मे काम करने के लिए आवश्यक है। जैसे सास लेना, हृदय का चलते रहना पाचन-संस्थान का काम करते जाना आदि। अनैच्छिक नाडियों मे कई ऐसी भी हैं जो इच्छा पर भी काम करती हैं। और कुछ अनैच्छिक नाडिया ऐसी भी हैं जो किसी-किसी व्यक्ति मे ऐच्छिक नाडियों की तरह काम करती हैं। हमारी पलकें ऐच्छिक और

अनैच्छिक, दोनो प्रकार की नाडियो से सयुक्त हैं। आवश्यकतानुसार पलकें आप-से-आप झपकती रहती हैं। लेकिन हम चाहकर भी उन्हे झपका सकते हैं। हमारे कान ऐच्छिक नाडियो से सम्बद्ध नही, जबकि बन्दर, घोडे आदि मे ऐसा है। हम चाहकर अपने कान नही हिला सकते। लेकिन मेरा एक साथी अपनी मर्जी से उन पर ध्यान जमाकर, चाहे जिस कान को भी, ठीक बन्दर की तरह हिला सकता था।

इससे यह सिद्ध होता है कि सभवत शरीर मे कुछ ऐसी अनैच्छिक नाडिया भी हैं जिन्हें ऐच्छिक बनाया जा सकता है। अथवा सभी अनैच्छिक नाडिया कभी-न-कभी ऐच्छिक रही हो और विकासक्रम मे अनैच्छिक हो गई हो। अत समुचित प्रयास से, साधना से उनमे से अनेक को ऐच्छिक बनाया जा सकना सभव हो।

चूकि योग एकाग्रता देता है, एक ही वस्तु अथवा उद्देश्य पर ध्यान जमाने की शक्ति देता है अत यह सभावना हो सकती है कि शरीर के अदर के अनेक क्रिया-कलापो को योगी इच्छा द्वारा नियत्रित कर सकता है।

मानसरोगविज्ञान से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। मानसिक बीमारियो में अनेक तथाकथित शारीरिक बीमारिया भी सम्मिलित होती हैं। जैसे बहरापन श्रवणयन्त्र मे खराबी के कारण भी हो सकता है और यत्र के पूर्णत ठीक रहने पर भी मात्र मनोवैज्ञानिक कारणो से हो सकता है। अथवा आंखो और इनकी नाडियो आदि के पूरी तरह स्वस्थ रहते भी कोई व्यक्ति अधा हो सकता है। दमा, ऐक्जिमा, आथराइटिस, पक्षाघात, नपुसकता आदि रोगो मे अधिकाश मनोवैज्ञानिक होते हैं ऐसा आधुनिक चिकित्साविज्ञान मानता है। मनोवैज्ञानिको का अनुभव है कि हर तरह की बीमारी के शारीरिक लक्षण हमारा अचेतन पैदा कर सकता है।

हम पहले मन के अचेतन की बात कह आए हैं। यह अचेतन अत्यत शक्तिशाली है और यह व्यक्ति को जैसे चाहे नचा सकता है। यह चाहे तो उसे पूरी तरह स्वस्थ रख सकता है और चाहे तो उसे बीमार बना सकता है—उसे शारीरिक बीमारियां भी दे सकता है, मानसिक बीमारिया भी। इससे यह पता चलता है कि हमारा अचेतन हमारे शरीर की सारी ऐच्छिक अनैच्छिक नाडियो, पेशियो, ग्रन्थियो, त्वचा और अगो पर प्रभाव डालने की क्षमता रखता है। सम्मोहित व्यक्ति को आदेश देकर सम्मोहक उसके शरीर के किसी भी अग पर जलने के फफोले उठवा सकता है, उसके किसी अग को बेकार कर सकता है, किसी अग में इतना बल दे सकता है जितना जाग्रत अवस्था में सभव नहीं। सम्मोहन की स्थिति में सम्मोहित का

अचेतन सक्रिय होता है, सम्मोहक का आदेश ग्रहण करने को तत्पर होता है।

मनोजन्यशारीरिक तथा मानसिक रोगों की चिकित्सा दरअसल व्यक्ति के अचेतन की चिकित्सा होती है। अचेतन में उथल-पुथल मचाने वाले आवेशों, कॉम्पलेक्सों, द्वन्द्वों आदि को अपनी विशेष पद्धतियों द्वारा मानस चिकित्सक यथासंभव चेतन के धरातल पर लाकर, उन्हें समझ समझाकर, उनकी रोगोत्पादक शक्ति को नष्ट करने का प्रयास करता है। जब चिकित्सक के सहयोग तथा सहायता से व्यक्ति अपने दबे आवेशों, गूढ़पाशों (कॉम्पलेक्सों) और द्वन्द्वों से छुटकारा पाने में सफल होता है तो वह नीरोग हो जाता है।

मानसचिकित्सा की मनोविश्लेषणात्मक पद्धति में मुक्त संयोजन (फ्री ऐसोसिएशन) से काफी काम लिया जाता है। इसमें रोगी को आराम से लेटकर अपनी तर्कशक्ति और ऐच्छिक विचारों को रोककर जो भी मन में आवे उसे बगैर उसकी अच्छाई-बुराई आदि का खयाल किए ज्यों के त्यों कहते जाना पड़ता है। मुक्त संयोजन में आहिस्ता आहिस्ता व्यक्ति का अचेतन ऊपर आने लगता है क्योंकि इस अवस्था में चेतन अचेतन के बीच पहरेदार (सेंसर) का काम करने वाला पूर्वचेतन, जो असामाजिक और अवांछित सामग्री को अचेतन से ऊपर नहीं आने देता निष्क्रिय होता जाता है।

ध्यानयोग में भी मुक्त संयोजन की प्रक्रिया होती है। कहा जाता है कि आप पद्मासन, सुखासन अथवा किसी भी आराम के आसन में बैठकर (वे योरोपीय लोग जो पांवों को मोड़ नहीं सकते कुर्सी पर उसकी पीठ से आराम कर बैठ सकते हैं) आंखें बन्द कर अपने मन को अबाध रूप में दौड़ने दें। आप पायेंगे कि आपके अंदर ऐसे-ऐसे अजीबो-गरीब विचार उठते हैं दृश्य दीखते हैं जिनकी कभी आपने कल्पना भी नहीं की थी और न कभी कर सकते हैं। ये आपके अचेतन के ऊपरी सतह पर आते हुए विचार हैं। अगर लम्बी अवधि तक मन को मुक्त छोड़कर आप इसी तरह ध्यान लगाते रहें तो आप पाएंगे, धीरे धीरे आने वाले विचारों में कमी आती जाएगी और एक समय ऐसा भी आ सकता है जब मन पूरी तरह विचार शून्य हो जाता है। ऐसी स्थिति आने के बाद ही समाधि की अवस्था आ पाती है। कितने दिनों में ऐसा होगा यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर होगा। किसी के लिए ऐसा कुछ दिनों में, किसी के लिए कुछ महीनों में और किसी-किसी के लिए कई-कई वर्षों में ऐसा हो सकता है। और कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जिनमें यह स्थिति कभी नहीं आवे, क्योंकि जितने समय में ऐसा

होने की उसके लिए सभावना थी उसके पहले ही वह जग छोड गया।

राजयोग के ध्यान के द्वारा जब ऐसी स्थिति आ जाती है तो योग के उद्देश्य की प्राप्ति हो गई ऐसा कहा जा सकता है, क्योकि पतजलि के अनुसार चित्तवृत्तियो का निरोध ही योग है।

इस अध्याय को समाप्त करने के पहले हम योग के द्वारा मान्य नाडियो और चक्रो के सबध मे चर्चा करना चाहेंगे।

योग ने मानव शरीर मे तीन प्रमुख नाडियो और ६ चक्रो का होना माना है। मेरुदड के बीच मे अवस्थित नाडी का नाम सुषुम्ना है। सुषुम्ना के बाईं ओर इडा नाडी है और दाहिनी ओर पिगला। इन नाडियो से होकर प्रकाश की धाराए प्रवाहित होती रहती हैं। सुषुम्ना के निम्न भाग म मूलाधार चक्र है और ऊपरी भाग मे आज्ञाचक्र। आज्ञाचक्र के ऊपर मस्तिष्क के अदर सहस्रार (हजार दलों वाला कमल) अवस्थित है और यह उच्चतम चेतना का वासस्थान माना जाता है। कहा जाता है कि इस कमल के केन्द्र स्थल पर उज्ज्वल शिवलिंग है जो पवित्र चेतना (शिव) का प्रतीक है। यह वही स्थान है जहा शिव शक्ति का आश्चयजनक योग, चेतना का तत्व एव शक्ति से सयोग तथा व्यक्तिगत आत्मा का असीम आत्मा (परमात्मा) से मिलन होता है।

छ चक्रो के नाम हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुरा, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र।

मूलाधार मेरुदड के सबसे निचले भाग मे है। यह मूल केन्द्र माना जाता है। इसके केन्द्र मे एक लाल त्रिभुज है जिसका शीर्ष नीचे की ओर है। इसके अदर धूसर रग का शिवलिंग है जिसके चारो ओर सुनहरे रग का सप साढे तीन कुण्डली मारे सोया रहता है। इसे कुडलिनी शक्ति कहते हैं। यह प्राथमिक तथा सबसे महत्वपूण शक्ति है। यही मूल कामशक्ति है। योग के द्वारा इसी कुडलिनी शक्ति को जगाकर क्रमश स्वाधिष्ठान आदि अन्य ऊपर स्थित चक्रों से ले जाकर सहस्रार में पहुचाया जाता है। योग का अन्तिम लक्ष्य यही माना जाता है।

स्वाधिष्ठान मूलाधार के कुछ ऊपर जननेन्द्रिय के ठीक पृष्ठप्रदेश मे माना जाता है। इसका सबध शरीर के उत्तेजक तथा प्रजनन अगो मे माना जा सकता है। यह अचेतन का केन्द्र स्थान माना जाता है।

मणिपुर चक्र नाभिस्थल के पीछे है और इसका सबध पाचन-संस्थान से माना जा सकता है। इसे अग्नि का केन्द्र माना जाता है।

अनाहत चक्र हृदय स्थान पर माना जाता है। इसका सबध हृदय तथा फेफडो से समझा जाता है। इस चक्र पर ध्यान करने के लिए साधक

की लौ की कल्पना करनी चाहिए ऐसा कहते हैं।

विशुद्धि चक्र गले के निचले भाग म अवस्थित माना जाता है। यह कठनलिका, थायरॉयड और पैरापायरायड को प्रभावित करता है ऐसा समझा जा सकता है।

आज्ञा चक्र भौंहो के मध्य भाग म स्थित है। इस तृतीय नेत्र अथवा शिवनेत्र भी कहा जाता है। ध्यान की अधिकतर प्रक्रियाओ म इसी पर ध्यान किया जाता है। गहरी तथा उच्च चेतना के प्रदेश म खुलने वाला यह आत्मिक द्वार है। कहा जाता है कि आज्ञा चक्र को सक्रिय बनाकर बौद्धिक शक्ति स्मरण शक्ति, इच्छाशक्ति, एकाग्रता आदि मानसिक शक्तियो की वृद्धि की जा सकती है।

आधुनिक वैज्ञानिक शरीरक्रियाविज्ञान के अनुसार शरीर म उपयक्त तरह की न तो नाडिया हैं और न चक्र। हा, इतना सही है कि मस्तिष्क के निम्न भाग से आरम्भ होकर, मेरुदड के भीतर, सुषुम्ना (Spinal Cord) गुदा द्वार के ऊपर तक अवस्थित है और यह मस्तिष्क स नीचे और नीचे से मस्तिष्क की ओर जाने वाली हर प्रकार की ऐच्छिक अनच्छिक सवेदन तथा क्रियानाडियो का पुज है। शरीर की अधिकाश क्रियाए इन्ही के माध्यम से परिचालित होती हैं। इसके दोनो ओर इडा (चद्र) तथा पिंगला (सूर्य) नाडियो का होना मात्र कल्पनाजन्य है। उसी तरह सात चक्र भी काल्पनिक हैं। हमारे योगशास्त्रनिर्माता शरीर के अदर की सुषुम्ना तथा इसके विभिन्न स्थानो द्वारा शरीरक्रियाओ के नियत्रण के सबध मे कुछ ज्ञान अवश्य रखते थे इसम सन्देह नही। वे इतना जानते थे कि मानव के अदर सबसे प्रबल उसकी यौनशक्ति है। मनोविश्लेषण के जनक सिग्मड फ्रॉयड भी इसी परिणाम पर पहुचे थे कि कामशक्ति (Libido) ही सबस प्रमुख प्रवृत्ति है और मनुष्य के सारे व्यापार इसी से चलते है और आधुनिक मनोविज्ञान मे अधिकतर वैज्ञानिक इस सिद्धात को सच्चा मानते हैं। फ्रायड के अनुसार साप पुरुष जननेंद्रिय का प्रतीक है। योगियो ने भी मूलाधार म कुडलिनी (सर्प) के सोय रहने की कल्पना की ह। मनोविश्लेषण कामशक्ति के उदात्तीकरण (Sublimation) की बात कहता है। उसकी मान्यता है कि अपनी कामशक्ति को सामान्य यौनाचार स हटाकर अगर उसे यौनेतर मार्गों पर ले जाया जाय तो व्यक्ति बौद्धिकता साहित्य कला, मानवता धार्मिकता आदि के उच्चतम शिखर पर पहुच सकता है। योगी भी इसी कुन्डलिनी को जगाकर उसे सामान्य सेक्स से हटाकर, बौद्धिकता और आध्यात्मिकता के उच्चतम शिखर सहस्रार तक ले जाना अपने योग का चरम लक्ष्य मानते हैं।

रही बात स्वाधिष्ठान, मणिपुरा आदि अन्य चक्रो की तो ये सारे भी कल्पित हैं और इन पर जो तरह-तरह के काल्पनिक चित्रो-दृश्यो सहित ध्यान लगाने को कहा जाता है उससे अपने आपको आदेश देने से जो मनोवैज्ञानिक लाभ हो सकते हैं वे ही होगे। इससे अधिक कुछ नही।

यहा प्रश्न उठ सकता है कि योगियो को इस तरह की कल्पना करने की आवश्यकता क्या थी ? इसका उत्तर यह हो सकता है कि, जैसाकि हम पहले भी कह आए हैं, आदमी के अदर कुतूहल स्वाभाविक रूप मे, जन्म के साथ, वर्तमान रहता है और यही उसे जीवित रखने और उसके ज्ञानार्जन का सबसे बडा प्रेरक है, आदमी अपने परिवेश को समझना चाहता है। जीवन को समझना चाहता है। मृत्यु को समझना चाहता है। मृत्यु के उस पार क्या है वह जानना चाहता है। जो कुछ उसके अनुभव क्षेत्र मे है उसे तो जानना ही चाहता है, जो अनुभव के परे है उसे भी जानना चाहता है। उसके जिन प्रश्नो के उत्तर प्रत्यक्ष अनुभव से मिल जाते हैं उन्हे प्रत्यक्ष दर्शन से प्राप्त करता है। और जिनके उत्तर प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त नहीं होते उनके उत्तर अनुमान से कल्पना से प्राप्त करने की चेष्टा करता है। यह सभ्यता के आदिकाल से होता आया है और सृष्टि के अत तक यह क्रम चलता रहेगा। जबतक प्राणी के अदर बुद्धि रहेगी वह ऐसा ही करता जाएगा।

मन और शरीर के क्रियाकलापों के सबध मे भी ऐसा ही हुआ है। आदमी जहा तक, जब भी, अपने मन और शरीर को समझ सका, उसने वहा तक उसे उस रूप मे ग्रहण किया। जो नही समझ सका उसके सबध मे कल्पना से काम लिया।

आत्मा, परमात्मा, परलोक आदि इसी तरह की कुतूहलजन्य कल्पनाओ की उपज हैं। परमात्मा से अलग होकर आत्मा का निरतर उसी की खोज मे रहना ताकि अतत वह उसी मे विलीन हो जाए, मृत्यु के बाद भी आत्मा का कायम रहना, चाहे सूक्ष्म शरीर मे या और तरह से, अपने पहले के कर्मों के अनुसार नए नए जन्म ग्रहण करते जाना तबतक जबतक कि निर्वाण अथवा मोक्ष नहा हो जाए अथवा स्वर्ग-नरक मे जाना, कयामत के दिन परमेश्वर के द्वारा फैसला पाना आदि आदमी के सृष्टि के यथार्थ को समझने के लिए निरतर चलने वाले प्रश्नो के उत्तर के रूप मे उसकी उर्वर कल्पना शक्ति की उपज छोड और कुछ नही।

इन और इन जैसी अन्य मान्यताओ के पीछे आदमी का रहस्य के प्रति एक प्रवृत्यात्मक आकर्षण भी है। मानव मन ऐसा बना है जो ठेठ यथार्थ को उसी रूप मे लेकर सतुष्ट नहीं रह सकता। वह हर कुछ को किसी न-किसी

तरह के रहस्य के पर्दे के पीछे देखना चाहता है। जो है वह तो है। उसमें और क्या सौंदर्य रह गया कि उसे बार-बार देखे, उसे देखकर खुश हो? सौंदर्य में अंदर पचहत्तर से अधिक भाग काल्पनिक होता है। यही कारण है कि प्रेमी को अपनी प्रिया संसार की सबसे खूबसूरत लड़की लगती है—रति, वीनस, हेलेन, सरस्वती। और उसी प्रिया के भाई को वह गंदी, फूहड़ और असुंदर लगती है जिसमें दोष ही दोष हैं, तारीफ करने लायक एक भी गुण नहीं। प्रेमी रहस्य की दुनिया में होता है यथार्थ से अधिक कल्पना की दुनिया में होता है जबकि सगा भाई जिसे दिन रात अपनी बहन के साथ रहना पड़ता है, यथार्थ के धरातल पर होता है।

विचारक, धर्मप्रवर्तक, प्रचारक, साधु, योगी, रहस्यवादी संत आदि चाहे तो इस बात को स्पष्ट रूप में जानते हैं अथवा बगैर जाने भी रहस्य की ओर आकृष्ट रहते हैं। इसलिए वे रहस्य की बातें करते हैं। और रहस्य की ये बातें आम आदमी को गहरे प्रभावित करती हैं।

प्रचारक यह भी जानते हैं कि आम आदमी बड़ी आसानी से प्रभावित होता है, बड़ी आसानी से सम्मोहित होता है। वे यह भी जानते हैं कि अगर किसी आदेश को लगातार दुहराते जाया जाए तो उसका प्रभाव और भी अधिक होता है। जैसाकि हिटलर ने अपनी पुस्तक 'मेरा संघर्ष' में लिखा है—किसी झूठ को सौ मंचों से दुहराओ तो वह सच हो जाता है, वैसे ही हर रहस्य की बात, चाहे वह जितनी भी गलत, तर्कहीन, झूठी क्यों न हो, सैकड़ों, हजारों, लाखों बार दुहराई जाए तो परम सत्य से भी अधिक सत्य हो जाती है। तथाकथित भगवान रजनीश ने तो इस कला का इस हद तक बढ़ाया है कि अपनी प्रवचन सभा के कक्ष के बाहर लिखवा दिया है—आप अपनी बुद्धि और जूते बाहर ही छोड़कर आवें। यूँ उन्हें कुछ दूर तक ईमानदार भी मानना पड़ेगा क्योंकि वह स्पष्ट कहते हैं, हमारी बातें सिर्फ श्रद्धा और भक्ति से ही मानने योग्य हैं। तर्क करोगे तो शायद वह सही नहीं लगें।

प्रकारान्तर से यही बात सभी प्रचारक कहते हैं। धर्म, भगवान आदि सभी विश्वास की चीजें हैं, तर्क की नहीं। विश्वास करो और ठगे जाओ और दुनिया का हर दस में कम-से कम नौ आदमी चूंकि आत्मप्रवंचना पसंद करता है इसलिए वह अपने को ठगने में आनंद और संतोष प्राप्त करता है।

विशेष वातावरण में सम्मोहनात्मक आदेश अधिक प्रभावी होता है यह ज्ञान भी प्रचारकों को प्रारंभ से ही रहा है। इसीलिए मंदिर बने, मस्जिद और गिर्जे बने, तीर्थस्थान बने तरह-तरह के अनुष्ठान बने आग जलाना धूप जलाना घंटे घड़ियाल बजाना, प्रार्थना के गीत गाना,

मन्त्रोच्चार करना, एकान्त मे बैठकर माला फेरना या अजपा जाप और सामान्य जाप करना, जगल मे जाकर योग साधना अथवा तपस्या करना आदि सम्मोहनजनित आदेशो को अधिकतम प्रभावी बनाने के उपाय ही तो हैं। उस पर हर मच से, हर मन्दिर, मस्जिद, गिर्जाघर से, हर रेडियो और टी० वी० स्टेशन से, हर प्रार्थना सभा से, दिन-रात कहा जाता है, हमारा धर्म जो कहता है आख मूदकर विश्वास करो। सोचो मत, तर्क मत करो, युक्ति मत ढूढो। ऐसा करना पाप है। धर्मग्रन्थ, बाइबल, कुरान जो कहते हैं उसे अन्तिम सत्य मानो-मानो मानो

और आम आदमी तो क्या, काफी सारे पढे-लिखे, तथाकथित उच्च-शिक्षित लोग भी अपनी बुद्धि को पूरी तरह सुलाकर (हिप्नोसिस इसे ही कहते हैं न !), सम्पूर्ण श्रद्धा, विश्वास और भक्ति से इन बातो को सुनते हैं और ससार का कारोबार इसी तरह की प्रवचना, धोखे और ठगी पर चलता रहता है।

क्योकि आत्मप्रवचना हम सुखकर लगती है, यह हमारे खून मे है। हमारे बचपन के अनुकूलन, शिक्षा तथा सस्कार हमारे अदर इसकी जड़ें मजबूत कर देती हैं।

आप कहेंगे कि अगर हमारा उपर्युक्त कहना सच है तब तो योग के द्वारा मिलने वाले सारे लाभ चाहे तो होंगे नही अथवा वे आत्मप्रवचना जन्य ही होंगे।

इसका उत्तर यह है कि हठयोग द्वारा होने वाले सारे लाभ अवश्य होंगे—उनका पेशियो पर, नाडिसस्थान पर पाचन-उत्सजन सस्थान पर, हृदय, फेफडे तथा मस्तिष्क पर, नलिकाविहीन तथा अन्य ग्रथियो पर लाभकारी प्रभाव अवश्य होंगे क्योकि ये शरीरक्रियाविज्ञान के नियमो के अनुकूल हैं। चूकि हमारे मन का, हमारे विचारों का, हमारे अचेतन का हमारे शरीर पर काफी दूर तक नियत्रण होता है इसलिए जिन काल्पनिक लाभो के विश्वास के साथ हम योगाभ्यास करेंगे उनके लाभ भी अवश्य होंगे। हम आत्मा तथा परमात्मा के सिद्धान्तो पर चाहे विश्वास न भी करें, हम चाहे एक ईश्वर मानें या करोडो देवी-देवता, या भूत प्रेत, चाहे निराकार ईश्वर पर विश्वास करें ईसा और मुहम्मद पर ईमान रखें या बुद्ध पर भी विश्वास नही रखें योगाभ्यास के लाभ हममे हरेक को मिलेंगे ही। ठीक उसी तरह जैसे आपको विषविज्ञान का ज्ञान चाहे हो, नही हो या गलत हो, आप सखिया खाएगे तो मरेंगे ही। उसी तरह आप दूध के गुण अवगुणो के सबध मे कुछ जानें या न जानें, या जो जानें गलत जाने

फिर भी दूध आपको पोषण देगा ही।

रही बात राजयोग अथवा ध्यानयोग के लाभ की, तो आप अपनी जिन मान्यताओं को भी साथ लेकर चलें, अगर ध्यान में आपको पूर्णता प्राप्त हो गई तो आपको चित्त की वृत्तियों, आवेशों चेतन अचेतन विचारों के प्रवाह से मुक्ति मिल जाएगी, शान्ति मिल जाएगी। शाश्वत आनन्द की अवस्था में आप पहुंच जाएंगे। और यही अवस्था तो मोक्ष अथवा निर्वाण की अवस्था है न!

७

क्या ईश्वर सच ही नही है ?

योग का अन्तिम लक्ष्य आत्मा को परमात्मा में मिला देना है।

इस परमात्मा की तरह-तरह की व्याख्याएं की गई हैं। निराकार रूप मे भी उसे माना गया है, साकार रूप म भी। किसी ने उसे ब्रह्म कहा है, किसी ने देहधारी माना है।

हिन्दू धर्म मे परमात्मा ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप मे भी कल्पित है।

यद्यपि छः हिन्दू दर्शनो में सांख्य और मीमांसा ईश्वर नही मानते, बौद्ध और जैन धर्म भी ईश्वर नही मानते, फिर भी हिन्दू मन कहीं-न-कहीं से एक ऐसे ईश्वर के साथ अवश्य जुड़ा है कि कोई शक्ति है जिसने सृष्टि की, इसके लिए नियम निर्धारित किए, जो सर्वज्ञ है सर्वशक्तिमान है, दयालु है न्यायी है अच्छे-बुरे का निर्णय करता है और उसी के अनुसार पुरस्कार या दंड देता है।

ईसाई भी एक दयालु न्यायी, सर्वशक्तिमान ईश्वर पर विश्वास करते हैं। मुसलमान भी दयालु (रहीम) ईश्वर पर विश्वास करते हैं यद्यपि उसे निराकार मानते हैं।

हिन्दुओ ने तो परमात्मा अथवा ईश्वर को अनेक रूपो मे ग्रहण किया हुआ है जो हम आदमियो की तरह देहधारी है—वह शिव है (जिसकी पत्नी पार्वती है), विष्णु है (जिसकी पत्नी लक्ष्मी है), ब्रह्मा है (जिसकी पत्नी उनकी अपनी बेटी सरस्वती है) राम है कृष्ण है (गीता का कृष्ण भी जिसकी प्रिया किसी और की पत्नी राधा है—जो अपने को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान आदि कहते हैं।)

अब अगर आप सच ही एक समझदार, तर्कशील व्यक्ति हैं और साथ ही एक जगन्नियन्ता, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ दयालु तथा न्यायी ईश्वर पर विश्वास करते हैं, उसकी भक्ति करते हैं तो मैं आपसे कुछ प्रश्न करना चाहूंगा। आप पूर्वाग्रहहीन होकर, सर्वथा युक्तिसंगत रूप मे इनके

उत्तर अपने आपको देने की कोशिश करें।

अगर ईश्वर है (और उसमे वही गुण हैं जिनका उल्लेख मैंने ऊपर के पैराग्राफ मे किया है) तो—

१ क्या वह स्वय हर व्यक्ति मे (पशु, पक्षी, कीट पतग, पेड-पौधा तक मे) अपने सबध म पूर्ण ज्ञान नही दे सकता ?

२ अगर नही देता तो क्यो ?

३ क्या ऐसा तो नही कि वह इसकी आवश्यकता नही समझता ?

४ तो फिर भिन्न भिन्न व्यक्तियो, धर्मों, मतो आदि को उसके सबध म ज्ञान देने की क्या आवश्यकता है ?

५ एक बार ऐसा ज्ञान दे देने के बाद उसके सबध मे निरतर प्रोपैगैण्डा की आवश्यकता क्या है ? क्यो है ?

६ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को ईश्वर अपने सबध मे भिन्न भिन्न ज्ञान क्यो देता है ? ईश्वर इस तरह अपने सबध मे लोगो को कन्फ्यूज क्यो करता है ? चक्कर मे क्यो डालता है ?

७ अगर वह सर्वशक्तिमान और समझदार है तो क्या एक बार ससार, इसके पेड-पौधे, पशु पक्षी, मनुष्य आदि बना चुकने के बाद उसने जब देखा कि उनमे खामिया खराबिया, बुराइया रह गई तो बाद मे उसने उनम समुचित सुधार क्या नही किया ? अब भी क्यो नही करता ?

८ क्या ईश्वर को इतनी अक्ल नहीं थी कि जब दुनिया बनाने लगा था तो सारा कुछ अच्छा ही बनाता, सुन्दर ही बनाता, बुरा नहीं बनाता कुरूप नही बनाता ?

९ अगर उस कर्म का सिद्धान्त बनाना ही था तो क्या वह ऐसा नही कर सकता था कि किसी भी प्राणी के अदर (चाहे वह मनुष्य हो या कुछ और) सिर्फ अच्छे कर्म करने की ही बुद्धि और शक्ति देता ताकि कोई बुरे कर्म नही करता ? अगर गलती से आरभ मे अच्छे-बुरे की बुद्धि और शक्ति दे दी तो बाद म उस गलती को सुधारा क्यों नही ? अब भी क्यो नही सुधारता।

१० क्या वह इतना छोटा है इतना हीनभावना ग्रस्त है, कि उसे अपनी प्रशस्ति सुनना पसद है ताकि जो उसकी प्रशसा करें उन्हें तो पुरस्कार दे और जो उसकी प्रशसा नही करें उनकी चाहे तो उपेक्षा कर दे या उन्हें दड दे ?

११ अगर उसे अपनी प्रशसा सुनने का इतना ही शौक है तो जन्म से साथ हर प्राणी के अदर यह प्रवृत्ति क्यो नही दे देता कि वह हर घड़ी उसकी प्रशंसा करता रहे ? इसके लिए दिन रात उसके एजेन्टो को प्रचार

क्यो करते रहना पड़ता है ?

१२ क्या ईश्वर इतना क्रूर है कि उसे अपने ही बनाए प्राणियो के कष्ट देखकर आनन्द आता है ? अगर नही तो क्या वह अपनी बनाई हुई दुनिया मे—अगर वह सर्वशक्तिमान, दयालु और समझदार है तो—कुछ ऐसा नही कर सकता कि कही न कोई कष्ट रह जाए और न कोई कुरूपता ?

अगर आप एक अच्छे चित्रकार हैं तो क्या आप जानबूझकर बुरा चित्र बना सकते हैं ? अगर कभी आपसे कोई बुरा चित्र बन भी जाए तो क्या आप फौरन उसे मिटाकर नया, अच्छा चित्र नही बना देंगे ?

अगर आपमे ऐसी शक्ति होती कि आप जैसे चाहे बच्चे पैदा कर सकें तो क्या आप गन्दे, दुष्ट, कुरूप, बीमार बच्चे पैदा करते ? या आप सिर्फ अच्छे, सुन्दर, स्वस्थ बच्चे ही पैदा करते जो हमेशा सुख मे रहते ? हर किसी को सुख देते ? न स्वय दुख भोगते, न किसी को दुख देते ?

१३ अगर आप सृष्टि और इसके प्राणियो को ईश्वर की लीला मानते हैं तो उस लीला करने वाले को क्या मानेंगे जिसके खिलाडियो को, तरह-तरह के कष्ट हैं ? क्या वह ऐसी लीला नही कर सकता था जिसमे सभी खिलाडी सुखी होते ?

ईश्वर और धर्मों की बात सोचते हुए कुछ और प्रश्न भी आप अपने से पूछ देखिए

१ हिन्दू मानता है कि हर जीव का बार-बार जन्म होता रहता है—जिसका जैसा कर्म होता है आगे उसी के अनुसार उसे भोगना पडता है।

मुसलमान और ईसाई कहते हैं—ईश्वर ने आदमियों को बना दिया और उसे कर्म करने की स्वतन्त्रता दे दी। मरने के बाद हर आदमी की रूह कही जाकर इन्तजार करती है। फैसले के दिन ईश्वर हर किसी को जहा उसकी इच्छा—नरक या स्वर्ग मे, अनन्त जीवन मे—भेज देता है। उसकी इच्छा सर्वोपरि है। किसे स्वर्ग मिलेगा, किसे नरक, इस पर आदमी के कर्मो का प्रभाव नही। हा, इतना समझा जाता है कि ईश्वर अच्छे कर्म पसन्द करता है बुरे नही। इसलिए उम्मीद की जाती है कि अच्छे कर्म करने से स्वर्ग मिल सकता है।

हिन्दू और मुस्लिम तथा ईसाई मान्यताओ मे यह विसगति क्यो ? ईश्वर ने अपने पैगंबरो, सदेशवाहको, अवतारो को अपने और अपने नियमो के सबध मे परस्पर विरोधी सिद्धान्त देकर क्यो भेजा ? अगर ईश्वर एक है, उसके नियम एक हैं तो सारे ससार मे एक ही धर्म क्यो नही हुआ ? हर धर्मसस्थापक—अगर वह ईश्वर का विशेष पुत्र अथवा दूत था—तो उसने ईश्वर, उसके नियम, उसके धर्म के सबध मे एक ही तरह

की बातें क्यो नही बताई ?

प्राय हर धर्म कहता है कि ईश्वर की इच्छा के बगैर एक पत्ता तक नही हिलता, यहा जो कुछ होता है ईश्वर की इच्छा से ही होता है। अगर यह सही है तो हर व्यक्ति वही करता है जो ईश्वर उससे कराता है। फिर ईश्वर के स्वय के द्वारा कराए गए कर्मों के लिए ईश्वर उसे पुरस्कार अथवा दड क्यो देता है ? (अगर देता है तो ?)

२ अच्छे और बुरे कर्मों की परिभाषा भी विभिन्न मजहबो मे अलग अलग है। ईसाई ईश्वर सूअर के मास को बुरा नही मानता, जबकि मुस्लिम ईश्वर इसे बुरा मानता है। हिन्दू ईश्वर मासाहार को बुरा भी मानता है, ठीक भी मानता है। हिन्दू ईश्वर को गोमास अच्छा भी लगता है, बुरा भी। ऐसा क्यो है ?

३ कहा जाता है कि परोपकार करना, अन्य प्राणियो—विशेषकर मनुष्यो की—भलाई करना अच्छा काम है, ईश्वर को पसन्द है। तो जो हर दिन करोडो रुपए ईश्वर की प्रार्थना पूजा, प्रचार मे खर्च किए जाते हैं उन्हें आदमियो की भलाई मे लगाया जाता तो क्या यह अधिक अच्छा कर्म नहा होता ? ईश्वर को अधिक पसन्द नही आता। अगर पृथ्वी की आबादी साढे तीन अरब मानी जाए और प्रति व्यक्ति औसतन दस पैसे प्रतिदिन का खर्च ईश्वर की प्रार्थना, पूजा, प्रचार (सारे मन्दिर, मस्जिद, गिर्जे, मठ पडे पुजारी, पादरी, मुल्ले, सस्थाए आदि तथा व्यक्तियो के त्योहार, चढावे अन्य पूजा, व्रत आदि सबधी कार्यों) पर माना जाए तो हर रोज के पैंतीस करोड रुपयो का खर्च आता है। रोज के पैंतीस करोड तो वर्ष के बारह खरब अठहत्तर अरब पचास करोड रुपए हुए। अगर इतने रुपए लोगो की भलाई के कामो मे लग सकते तो कल्पना कीजिए, कितने देशो के दुख-दर्द मिट जाते ? कितना काम हो सकता ? अपनी प्रार्थना, पूजा, प्रचार मे लगे इन रुपयो का लोगो की भलाई मे लगने से क्या ईश्वर अधिक प्रसन्न नही होता ?

४ बाइबल (ओल्ड टेस्टामेन्ट) के अनुसार पृथ्वी आज से लगभग साढे छ हजार वर्ष पहले बनी। (आरभ मे ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी बनाई यानी उसके पहले न तो पृथ्वी थी, न आकाश था न ग्रह-नक्षत्र, तारे आदि।) पृथ्वी आकाश, प्रकाश आदि सारे साढे चार हजार साल पहले बने, जिसके बाद ही अन्य प्राणी बनाए गए।

वैज्ञानिक कहते हैं कि आकाश अर्थात शून्य हमेशा से था हमारी पृथ्वी करोडो वर्ष आगे बनी और सूर्य तथा करोडो अरबो अन्य तारे, नक्षत्र ग्रह ६ उससे भी करोडो अरबो वर्ष आगे बने।

इस पृथ्वी पर विज्ञान के अनुसार, मनुष्य बीस लाख वर्षों से भी पहले बना।

तो सच कौन है ? झूठ कौन है ?

इस पृथ्वी के अलावा जो लाखो-करोडों ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि हैं वे किसने बनाए ? वे कब बनाए गए ? बाइबल के अनुसार तो पृथ्वी बनाने के बाद ही आकाश में तारे वगैरह ईश्वर ने बनाए। यह कैसा चक्कर है ?

क्या पृथ्वी का छोड जो अन्य ग्रह, नक्षत्र, तारे, ससार आदि हैं वहा के ईश्वर आदि वही हैं जो पृथ्वी पर के हैं ? क्या वहा अन्य पैगंबर भेजे गए हैं ? अन्य धर्म चलाए गए हैं ? क्या वहा के नियम भी वही हैं जो हमारी पृथ्वी के धर्मों के हैं ? या इनसे अलग कुछ ?

५ ये जो गॉडमेन हैं—साइबाबा और आनन्दमूर्ति और बालयोगेश्वर और जाने कौन-कौन-से अवतार, भगवान आदि जो तरह-तरह के चमत्कार दिखलाकर लोगो को अपने भगवान होने के प्रमाण देते रहते हैं, अगर सच ही उनमे सारी शक्तिया हैं तो ये ऐसा क्या नहीं करते कि हर कोई सुखी हो जाए ? ये सिर्फ उन्ही के लिए कुछ क्यो करते हैं जो उनकी भक्ति करते है उन्हे चढावे चढाते है, उनकी खुशामद करते हैं ?

६ जब पुनर्जन्म मानने वाला हिन्दू क्रिश्चियन या मुसलमान हो जाता है तो क्या उसका बार बार जन्म-मरण होना बन्द हो जाता है ? या क्रिश्चियन या मुसलमान हिन्दू हो जाता है तो क्या उसका बार-बार जन्म होने लग जाता है ?

७ क्या ईश्वर सबधी सारे विचार, विश्वास सिर्फ आत्म-सम्मोहन नही है ?

८ क्या जिन चीजो को चमत्कार (मिरेकल) माना जाता है (जिनके बल पर ही अधिकतर धर्म और धर्मप्रचारक ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करने का प्रयास करते हैं)—जहा तक वे सत्य हैं—वे सामान्य प्राकृतिक तथ्य (फेनोमेना) नही हैं जिनके सबध मे अभी हमारा ज्ञान सीमित है अथवा नही के बराबर है ? आज टेलिपैथी पराचेतन, साइकोकाइनेसिस वैज्ञानिक सत्य माने जा रहे हैं। कल तथाकथित चमत्कार भी (जो सच ही होते हो या हुए हो—मात्र कपोलकल्पित नहीं हो) वैज्ञानिक, प्राकृतिक सत्य माने जा सकते हैं। उनकी व्याख्या के लिए किसी दैवी, ईश्वरीय शक्ति के सिद्धात की आवश्यकता नही पडेगी, ऐसी भी तो सभावना है।

और अगर एक बार यह चमत्कार वाला अस्त्र ईश्वर के प्रचारको के हाथ से छिन गया तो किस बल पर उसका अस्तित्व वे सिद्ध किया करेंगे ?

इसी तरह के और भी अनेक प्रश्न हो सकते हैं। मैं आप सभी प्रबुद्ध

ईश्वरभक्तो से अनुरोध करता हू (जिन्हे समझ नही, जो सामान्यजन हैं, जिनके अदर तकशक्ति का अभाव है, उनसे ऐसा अनुरोध करना व्यर्थ है) कि आप मेरे इन प्रश्नो के उत्तर देने की कोशिश करें। मैंने दस साल की उम्र से ये प्रश्न करना आरभ किया था और लगातार पिछले चौवन सालो से इनके उत्तर ढूढने का प्रयास किया है। मुझे इनके जो उत्तर मिले होंगे, सभवत , आप उनका अनुमान लगा सकते हैं।

सभवत आप भी, मेरी ही तरह, इसी परिणाम पर पहुचें कि सच ही धर्मों मे माना जाने वाला ईश्वर नही है।

८

योग और सेक्स

महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग मे प्रथम पांच अंग यम के हैं। अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये पांच यम हैं। हर यम योगसाधना के लिए आवश्यक है। हम यहां चौथे यम, ब्रह्मचर्य, पर विचार करेंगे।

शब्दकोश मे ब्रह्मचर्य का अर्थ है—अष्टविधा मैथुन से बचने का व्रत, वीर्यरक्षा वर्णाश्रमी हिंदू के लिए विहित चार आश्रमो मे से पहला, ब्रह्म के साक्षात्कार की साधना।

कहा जाता है कि वीर्यपतन मृत्यु की ओर ले जाता है और उसका स्तंभन, धारण जीवन की ओर। जब तक आदमी (यानी पुरुष) अपने अंदर वीर्य का धारण किए रहता है, उसकी मृत्यु नही होती। (और स्त्रियां का क्या होता है? उनके शरीर में तो वीर्य नहीं होता। तो वे किस वस्तु का धारण कर अपने को ऐसा बनावें कि पुरुष योगी की तरह उनकी भी मृत्यु की संभावना नही रह जाए? या उनकी गणना मनुष्य मे नही?)

अगर यह सही है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य से मृत्यु नही होती तो आज हमारे बीच कितने ऐसे ब्रह्मचारी हैं जो हजारों साल से जीवित चले आ रहे हैं? योगी तो भारत मे हजारों हुए होंगे। उस पर महाभारत के भीष्म तो बाल-ब्रह्मचारी थे। रामायण के हनुमान को भी अखण्ड ब्रह्मचारी बतलाया गया है। हमने तो आज तक नहीं सुना कि हजारों साल का कोई योगी कहीं पाया गया है या भीष्म या हनुमान से किसी की मुलाकात हुई है।

यानी वीयरक्षा से मृत्यु को रोका जा सकता है यह बात भी उसी तरह अतिशयोक्तिपूर्ण है जैसे पुराणों के अनेक पात्रो का हजारों हजार साल तपस्या करना, अथवा राज्य करना आदि। वीर्यरक्षा के द्वारा अमर होने वाली बात का अर्थ शायद दीर्घ जीवन से संबंध रखता हो।

चलो यही मान लेते हैं, तो कुछ तो ऐसे अखंड बाल ब्रह्मचारी इतिहास

के पृष्ठो मे उल्लिखित होते जो अन्य लोगो की अपेक्षा सैकडो साल या बीसो साल अधिक जिए होते। सयोग से ऐसी चर्चा कही देखने मे नही आती।

और अगर वीयरक्षा से जीवन मिलता है और वीयपात से मृत्यु तो ससार के लाख मे निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे पुरुष शायद तीस साल की आयु तक भी जी नही सकते। लेकिन हम तो आम पुरुषो की उम्र साठ सत्तर अस्सी तक पाते हैं और वे तमाम उम्र स्वस्थ भी दीखते हैं।

किशोरावस्था के आगमन के साथ, यौनग्रंथियो (जैसे वृषण अथवा अडग्रंथि पौरुष ग्रंथि) की परिपक्वता के साथ, लडको का वीय किसी न किसी बहाने शरीर से बाहर होने लगता है, ऐसा चाहे हस्तमैथुन से हो, स्वप्नदोष से हो या मैथुन से, ठीक उसी तरह जैसे लडकिया की किशोरावस्था आते ही उनका ऋतुस्राव होने लगता है। और जब लडके की शादी हो जाती है वह चाहे चौदह की उम्र मे हो, अठारह की उम्र मे हो या पचीस की उम्र मे हो, वह अपनी पत्नी के साथ प्राय हर रोज, अथवा सप्ताह मे चार रोज या हर हफ्ते एक रोज मैथुन करने लगता है। अलग अलग व्यक्ति मे यह बारम्बारता अलग अलग हो सकती है। ऐसे भी लोग होते हैं जो शादी के शुरू के दिनो मे दिन रात मे कई कई बार तक मथन करते जाते हैं जो क्रम कुछ महीनो या कुछ वर्षों तक चलता रह सकता है और ऐसे भी लोग होते हैं जो महीने मे एक बार भी मैथुन कर लें तो उसे सामान्य मानते हैं, यद्यपि ऐसे लोगो की सख्या कम ही होती है। प्रतिदिन एक बार से लेकर महीने मे एक बार के मैथुन को काफी समझने वाले लोगो के बीच कोई जहा भी हो वह उसका स्वस्थ, सामान्य व्यवहार माना जाता है।

तो इतने इतने मैथुन मे इतना इतना वीय शरीर से निकालकर इतने सारे लोग जीवित कैसे रहते हैं? क्या यह ससार का सबसे बडा आश्चय नही है? कम-से-कम ब्रह्मचयवादियो के लिए तो होना ही चाहिए। क्योंकि उनके हिसाब से ऐसे हर आदमी को किशोरावस्था के आगमन और वीय निष्कासन के साथ ही दूसरी दुनिया मे प्रयाण कर जाना चाहिए था।

राम तो गृहस्थाश्रमी थे दशरथ की तीन रानिया थी। राम ने दाइ हजार वर्षों तक शासन किया था। दशरथ ने तो साढे ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया था। ऐसा कैसे हो सकता था? और हमारे पुराणों के सबसे बड़े योगेश्वर कृष्ण के हरम मे सोलह हजार पत्नियां थी। राधा आदि गोपियों के साथ प्रेमलीला चलती थी सो अलग से। महाभारत के अनुसार भी वह अपनी पूरी आयु जीकर ही परमधाम सिधारे थे। उस पर हमारे सबसे बड़े योगी यही माने गए हैं। तो ब्रह्मचय उनके पूर्ण योगी होने के

रास्ते मे आडे क्यो नही आया ?

मैं सिर्फ यह कहना चाहता हू कि ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा हमारे योगशास्त्रो अथवा अन्य धर्मग्रन्थो मे गाई गई है वह अत्यत अतिशयोक्तिपूर्ण है, शरीरक्रियाविज्ञान के सबध मे भ्रान्त धारणाओ पर आधारित है और सच नही। शरीर का अपना धर्म है। शरीर के अदर वीर्य का बनना उसकी नियमित प्रक्रिया मे से है। पुरुष की अड तथा पौरुषग्रथियो मे जो स्राव होता है उसी का मिश्रण वीर्य है। इन ग्रथियो के कार्यकलाप पर पिट्यूटरी ग्रथि का प्रभाव होता है। वीर्य का एकमात्र उपयोग गर्भाधान के लिए है। यह किशोरावस्था से आरभ होकर आजीवन बनता रहता है। मैथुन अथवा किसी भी तरीके से इसकी जो मात्रा निकल जाती है वह अगले कुछ घण्टो के अदर दुबारा बनकर पूरी हो जाती है। वीर्य के बनने मे आदमी के शरीर के रक्त का कोई हाथ नही होता। आम धारणा है कि जो भोजन हम करते हैं उससे रस आदि बनते हुए अन्त मे रक्त, फिर मज्जा और इसीसे (हर बत्तीस या चौसठ बूद) से एक बूद वीर्य बनता है। जबकि सत्य यह है कि वीर्य रक्त से बनता ही नही। (इसलिए यह कहना कि फला अमुक के खून से पैदा हुआ है, फला के अदर उसके माता पिता का खून दौड रहा है बिल्कुल गलत है। बच्चे के जन्म मे माता-पिता के खून का कोई योगदान नही होता।) इसलिए एक बूद वीर्य निकल जाने से चौसठ बूद रक्त निकल जाना अथवा एक तोला वीर्य निकलने से चौंसठ तोला रक्त का नाश होना सर्वथा गलत और हास्यास्पद है। (जो लोग लडको को हस्तमैथुन से उनका स्वास्थ्य—शारीरिक भी, मानसिक भी—नष्ट होने की बात कहते हैं वे उनके सबसे बडे शत्रु हैं, क्योंकि इस तरह की बातें सुनकर लडके बेहद डर जाते हैं और ऐसी धारणाओ के कारण अपने अदर वे अक्षमताए और बीमारिया पैदा कर लेते हैं जो सच मे होती नही।) सच पूछिए तो हस्तमैथुन लडके के यौनविकास के क्रम की अनिवार्य सीढी है। अनेक यौन मनोविज्ञानी तो हस्तमैथुन को सफल, सुखद विवाहित मैथुन की उपादेय तैयारी तक मानते हैं।

ब्रह्मचर्य के सबध मे ऐसे अतिशयोक्तिपूर्ण विचारों के पीछे सभवत यौन स्पर्धा को नियत्रित करने की धारणा रही हो। समाज निर्माण अथवा सभ्यता विकास के आदिकाल मे भी आदमी ने देखा होगा कि पेट की भूख के बाद ही (या कभी-कभी उससे भी पहले) सबसे प्रबल प्रवृत्ति यौन की है। यौन की सतुष्टि यौन सहभोगी से ही हो सकती है। यानी पुरुष को नारी चाहिए और नारी को मर्द। अब अगर यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल है तो जिस पुरुष के अदर इसने जिस समय सर उठाया होगा वह सामने जो

भी स्त्री पडी हो उसी के साथ इसे तृप्त करने की कोशिश की होगी। यही हाल स्त्री का भी होता होगा। अब हर समाज मे पुरुष और स्त्री के रूप म बाप हैं, भाई हैं, भतीजे है, पडोसी हैं, बेटिया हैं, बहनें हैं, भतीजिया हैं, पडोसिनें हैं। तो हर पुरुष के लिए यही औरतें थी और हर औरत के लिए यही मद। परिणाम यह होने लगा होगा कि अगर कई पुरुषो का—वे चाहे बाप-बेटे रहे हो भाई भाई हो, पडोसी-पडोसी हा—कभी एक ही स्त्रा के साथ—वह बटी हो वहन हो, भतीजी हो या पडोसिन—मैथुन की इच्छा हो गई हो तो परस्पर सघप होना अनिवाय हो गया होगा। यही हाल तब होता होगा जब कई स्त्रिया किसी एक ही समय किसी एक पुरुष क साथ मैथुन कामना करती हो। ऐसे सघर्षों की सभावना कम करने सभव हो तो हमेशा के लिए समाप्त करने के खयाल से मैथुन-साथी के चनाव पर बदिशें लगाने का विचार आया होगा। फिर किस पुरुष के लिए कौन कौन सी लडकिया और किस नारी के लिए कौन-कौन-से लडके या पुरुष वर्जित है यह नियम बनाए गए होगे। अत मे विवाह प्रथा का विचार किसी को आया होगा। विवाह-प्रथा का विचार आते आते समाज पुरुष प्रधान हा चुका होगा। इसीलिए एक पुरुष के लिए अनेक स्त्रियो के साथ विवाह का नियम तो बनाया गया होगा, एक स्त्री के एकाधिक विवाह की पूरी तरह मनाही रखी गई होगी। इतना ही नही, धीरे धीरे स्त्री को यौन रूप म इस तरह पति का गुलाम बना दिया गया होगा कि कुमारी अवस्था अथवा विवाहितावस्था म किसी भी ऐसे पुरुष के साथ जो उसका पति नही गलती से भी एक बार भी सम्भोग कर लेने से उसके लिए अनन्त काल तक रौरव नरक म जाने की बात कही गई होगी। जबकि पुरुष को उसके अविवाहिता-वस्था अथवा विवाहितावस्था मे अनेकानेक स्त्रियो के साथ रमण से न तो उसे पाप लगता होगा और न समाज उसे दडित करता हागा। विवाह और यौन नैतिकता के सबध म आज, बीसवी सदी के अन्त मे भी, यही दष्टिकोण और नियम ज्यो-के-त्यो चले आ रहे हैं।

और जब यौनक्रिया पर इस तरह से नियन्त्रण का प्रयास चल रहा हागा तो स्वाभाविक था कि लोगो का खयाल पुरुष क यौन-व्यवहार का नियन्त्रित करने की ओर भी गया हो। इसी विचार से उसने वीयरक्षा और ब्रह्मचय के लाभों की बात सोच ली होगी। और एक बार जब इस तरह का विचार आया होगा तो कुछ लोगो न अपने अदर तक मर-करके इस चरमसीमा पर पहुचा दिया होगा और कहने लगे हाग कि वीयनाश म मत्यु और वीयधारण स जीवन मिलता है।

योगियों तपस्वियो के लिए ब्रह्मचय की आवश्यकता से इन्कार नहीं

किया जा सकता। लेकिन यह इसलिए नहीं कि प्रवीयपात से उनके अदर कोई शारीरिक या मानसिक या आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है, ओज बढ़ता है, बल्कि इसलिए कि पुरुष-योगी किसी स्त्री की ओर ध्यान नही दे, उससे प्यार नही करे, उसे अपने पास रखने के लिए उसे रखैल या पत्नी नही बना ले, उसे प्रिया मानकर उसके पीछे-पीछे चक्कर लगाने मे समय नहीं नष्ट करे, अकेले मे जब योगासन और ध्यान करने की कोशिश करे तो उसे किसी कामिनी की शोख आखें और उत्तेजक उभार परेशान नही करें, विवाह करके परिवार चलाने के लिए पैसे कमाने मे उसका सारा समय और शक्ति नष्ट नही हो जाए, ताकि वह अपना पूरा समय और शक्ति योग-साधना मे, ध्यान धारणा-समाधि के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति के प्रयास मे लगा सके।

लेकिन अगर किसी योगी को ऐसा लगे कि ब्रह्मचय पालन करने मे उसके अदर की प्राकृतिक यौनप्रवृत्ति के कारण कठिनाई हो रही है, उसका अधिकतर समय और शक्ति बार-बार, लगातार और प्रबलता से स्त्री की ओर दौडने वाले विचारो और प्रेरणाओ को नियत्रित करने मे लगता है तो बेहतर है कि वह इस खामख्वाह के ब्रह्मचय को छोड सामान्य मैथुन से अपने को सतुष्ट कर लिया करे और शान्तिपूर्वक योग साधना करता रहे। वना उस तो जीवनभर, अपने अदर की दुदम यौनमागो के साथ सघष करने म ही सारी शक्ति खत्म कर देनी पडेगी। वह योग-साधना क्या करेगा ? उसे तो अपनी कामवासना से ही मुक्ति नही मिलेगी, उसे अन्तिम मोक्ष मिलेगा ही कहा से ?

हमारे प्राचीन योगियो-तपस्वियो मे अनेको ने इस सत्य को पहचाना था। इसीलिए महर्षि विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि अधिकतर ऋषि मुनि विवाहित थे। और विवाह और मैथुन उनके योग और तपस्या के माग मे बाधक नही बनते थे, बल्कि सहायक ही बनते थे।

हिन्दू दशनो के अनुसार मानव जीवन का अन्तिम और सबसे प्रबल उद्देश्य अनतिशय दुख से मुक्ति और अनतिसुख की प्राप्ति है। सुख और आनन्द को एक-दूसरे से अलग नही किया जा सकता। आदमी को सुख मिलता है उसकी शारीरिक मागो की पूर्ति मे (और दुख मिलता है उसकी शारीरिक मागो की अपूर्ति से।) यौनमाग आदमी की सबसे सशक्त माग है। उसकी पूर्ति सबसे अधिक आनन्द देता है। सच पूछिए तो रति के चरम सुख से बढ़कर आनन्द की कल्पना आज तक आदमी नही कर पाया। इस-लिए योग के द्वारा जिस ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने की बात कही जाती है उसे मैथुनानन्द के समान ही बतलाया जाता है।

योग मोक्ष दिला सकता है। व्रत, उपवास, तपस्या और ब्रह्मचर्य क्या दिलाते हैं? वैसे तो ब्रह्मचर्य योग की साधना में मददगार है, इसलिए पतंजलि ने इसे उसकी एक अनिवार्य सीढ़ी माना है, लेकिन ब्रह्मचर्य के और धार्मिक लाभ भी हैं, जैसे जप, तप, व्रत आदि के हैं।

मसलन हिंदू मानते हैं कि ब्रह्मचर्यपूर्वक व्रत, तप आदि किए जाएं तो स्वर्ग में उनका फल मिलता है। स्वर्ग के ये फल और जो कुछ हों, वहां एक-से-बढ़कर एक देवांगनाओं के उपलब्ध होने का भी प्रावधान है। शरशय्या पर भीष्म से जब युधिष्ठिर उपदेश ले रहे हैं तो उपवासों के महत्व बताते हुए भीष्म कहते हैं कि अगर आदमी इतने-इतने दिनों पर उपवास रखा करे तो उसके फलस्वरूप उसे स्वर्ग में इतनी इतनी अप्सराएं, देवकन्याएं मिलेंगी। जितना अधिक उपवास होगा इन देवांगनाओं की संख्या उतनी ही अधिक होगी। मुसलमान भी कहते हैं कि अगर आदमी पाक जिन्दगी बिताए अपने आपको गुनाह से बचाए खुदा के बताए रास्ते पर चले तो उसे बहिश्त मिलता है जहां उसके लिए सत्तर हसीन जवान हूरें होती हैं। तो अगर व्रत उपवास, परहेज, ब्रह्मचर्य से भी अंत में परियां, अप्सराएं, देवांगनाएं और हूरें ही मिलनी हैं (और ऐसा कहीं नहीं कहा कि इन परियों, देवांगनाओं का आप दूर से दर्शन किया करेंगे और अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करते रहेंगे, बल्कि स्पष्ट यही कहा गया है कि ये आपके आनंद के लिए होंगी) तो फिर इस पृथ्वी पर ही आप इस आनंद से वंचित क्यों रहें? बल्कि अगर आप पूर्ण ब्रह्मचारी हैं तो आपको तो उस आनंद का भी पता नहीं होगा जो नारीदेह से मिलता है। तो जिस आनंद का आपको पता नहीं उसे लक्ष्य बनाकर आप तमाम उम्र क्यों तपस्या करते रहें? क्या अपनी प्राकृतिक मांगों से संघर्ष करके अपने को जलाते रहें? बल्कि आप इस आनंद का यहां भी उपभोग कीजिए ताकि आपको अभ्यास रहे। कहीं ऐसा न हो कि आपके ब्रह्मचर्य, परहेज, नापुरहगारी और पुण्यों के पुरस्कार स्वरूप आपको जन्नत और स्वर्ग की एक-से-एक हसीन जवान मदमस्त अप्सराओं के बीच डाल दिया जाए और आपको पता ही नहीं हो कि आप इनका क्या करें? संभवतः अभ्यास के अभाव में आप कुछ करना भी चाहें तो नहीं कर सकें।

इस पर खयाल इस बात पर जाता है कि स्त्रियां भी तो आदमी हैं। अगर वे सतीत्व, व्रत धर्म-कर्म करें तो उन्हें भी तो किसी प्रकार का स्वर्ग मिलता होगा। स्वर्ग की देवांगनाएं तो उनके किसी काम की नहीं होंगी। तो क्या उनके लिए एक से-बढ़कर एक हसीन, जवान, समर्थ देवपुरुष होते होंगे? या वे स्वयं देवांगनाओं के रूप में वहां भेज दी जाती होंगी जो पुण्य

बल पर आए पुरुषों से आनन्द प्राप्त करती होंगी! अगर ऐसा होता हो तो फिर उनके जन्म-जन्म के एक ही पुरुष के प्रति सतीत्व का क्या होता होगा अगर वे पुरुष उनके अपने पिछले जन्म के पति नहीं होते हों? क्योंकि ऐसा आवश्यक तो नहीं कि जिस स्त्री को उसके पुण्यों के लिए स्वर्ग मिला हो उसका पति भी स्वर्ग पाने का अधिकारी पाया जाता हो। अपने कर्मों के कारण वह स्वर्ग छोड़ कहीं और भी तो भेजा जा सकता है, जैसे नरक या ऐसी ही कोई दूसरी जगह!

ये ऐसी उलझनें हैं जिनका सुलझाव आप उन धर्मगुरुओं से निकलवाने की चेष्टा कीजिए जो ऐसी बातें कहते हैं और जिनकी बातों पर आप आंखें बंद कर विश्वास करते हैं।

तन्त्रमार्ग योग की ही एक शाखा है, ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं। तान्त्रिक मतों में एक मत वामाचारी होता है।

वामाचार में पांच प्रकारों का विधान है—मद्य, मांस,मत्स्य, मुद्रा और मैथुन। इन्हें पंचमकार कहते हैं। तन्त्र साधना के लिए मछली मांस का भक्षण, शराब पीना और स्त्रियों के साथ जी खोलकर मैथुन करना अनिवार्य माना जाता है।

व्यवहार में पूर्ण ब्रह्मचर्य जिस तरह असंतुलित है जिसे उसकी चरम सीमा पर पहुंचा दिया गया है वैसे ही तन्त्र के मैथुन को उसके विपरीत दूसरी सीमा पर पहुंचा दिया गया है। ब्रह्मचर्य पर अप्राकृतिक रूप में दिए गए बल के फलस्वरूप ही हो सकता है कि यह प्रतिक्रिया हुई हो। जहां योगी हर प्रकार के भोग के त्याग को ही परमपद पाने का उपाय मानते थे वहां वामाचारियों ने कहा कि हर प्रकार के भोग के द्वारा ही परमपद पाया जा सकता है। उनका तर्क यह रहा होगा कि अगर तुम अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से लड़ने में ही अपना सारा समय और शक्ति नष्ट कर दोगे तो तुम ध्यान और समाधि में कहां तक पहुंच सकोगे? सो, क्यों नहीं अपनी स्वाभाविक दैहिक मांगों को यथेच्छ पूरी करो, उनका आनन्द लो, उनका उपभोग करो। एक बार की तृप्ति के बाद, पूर्ण सन्तोष और शान्ति पा जाने के बाद, निर्विघ्न होकर ध्यान में लीन हो जाओ। फिर जब दुबारा शरीर की मांग सर उठाए, वह चाहे पेट की हो, जिह्वा की हो या यौनेन्द्रिय की, फिर उन्हें भरपूर सन्तुष्ट कर लो और फिर निश्चिन्त होकर ध्यान समाधि में लग जाओ।

हम इन दोनों अतियों के बीच का मार्ग आपको अपनाने की राय देंगे। महात्मा बुद्ध ने भी मज्झम निकाय यानी मध्य मार्ग ग्रहण करने के उपाय को ही उचित बताया है। आप शरीर की मांगों को पूरा करने के लिए

उसकी पोषण और यौनक्षुधा शान्त करने के लिए, उनके द्वारा आनन्द उठाने के लिए एक सतुलित दृष्टिकोण अपनाए। न तो पूर्ण ब्रह्मचारी बनें और न अनाचार मे लिप्त हो जाए। दोनों अवस्थाए आपकी योग-साधना मे रुकावटें बनेंगी।

योग और सेक्स की बात करते हुए इतना और कहना चाहूगा कि एक मात्र मानव प्राणी म ही प्रकृति ने यौन को आनन्द की वस्तु बनाया है। इतर पशु-पक्षी के लिए यौनकर्म एक प्रवृत्ति को शान्त भर कर देना है। इसलिए हर पशु-पक्षी सिर्फ तभी मैथुन करता है जब मादा को गर्भ धारण करने की आवश्यकता होती है। यह तो मनुष्य ही है, जो बगर उक्त आवश्यकता के, जब चाहे, साल के तीन सौ पैंसठो दिन, हर वक्त, दिन या रात, मैथुन करने की क्षमता रखता है और यह उसके आनन्द प्राप्त करने का सबसे बडा साधन है। मैथुन का आनन्द मनुष्य को प्रकृति का सबसे बडा वरदान है।

ध्यान जहा एक ओर आदमी को (स्त्री को भी, पुरुष को भी) हर प्रकार के मानसिक तनावो से मुक्त कर उसे हर कुछ का पूरा आनन्द लेने योग्य बनाता है वहा दूसरी ओर हठयोग (आसन) उसे शारीरिक रूप से पूरा स्वस्थ बना देता है शरीर के अन्य सस्थानो की तरह उसके यौन सस्थान को सुपुष्ट करता है। इस तरह अगर आप नियमित रूप से, समुचित मात्रा मे, योगाभ्यास करें तो आपको अपनी प्रियतमा (प्रियतम) के साथ अधिकतम आनन्द प्राप्त होगा, यह निश्चित है।

९

क्या सभोग से समाधि सभव है ?

एक भगवान हैं जो पहले आचाय हुआ करते थे और जो, आजकल, भारत का पुण्यभूमि छोड अमेरिका सिधार गए हैं। जब वह आचाय थे जनता म उनकी पहली महत्वपूण किताब आई—सभोग से समाधि। इस पुस्तक ने पाठको की दुनिया मे एक धमाका सा पैदा किया और लोग वाह-वाह कर उठे कि देखा, ये एक आचाय आए हैं जिन्होने इतनी क्रातिकारी बात कह दी कि समाधि प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचय, यौन से सवथा परहेज नहीं यौन के पूरा उपभोग की जरूरत है।

लेकिन उन्होने यह कोई नई बात नही कही थी। यह तो तात्रिक मत में हजारो सालो से माना जाता आया था। इन आचाय (बाद के भगवान) के जन्म के भी बहुत समय पहले लोगो ने पाया था कि अपनी प्राकृतिक मागो का दमन करके, उन्हे नियत्रित करने के सघर्षों मे समय और शक्ति बर्बाद करके जितनी मिहनत से समाधि तक पहुचा जा सकता है उससे अधिक स्वाभाविक रूप मे और कम परिश्रम से हर कुठा, हर वजना से ऊपर उठकर, समाधि पाई जा सकती है।

आज से लगभग एक सदी पहले ऑस्ट्रिया के डॉ० सिग्मड फ्रायड ने आधुनिक युग मे वही बात अपने ढग पर कही। उन्होंने मानसिक रोगो के इलाज के सिलसिले मे मानव मन के अचेतन का पता लगाया और उसके कायकलापो के सबध मे सिद्धात बनाए। उन्होने कहा—कुठाए कम्प्लेक्स पैदा करती हैं। इनमे सबसे अधिक कम्प्लेक्स पैदा करती हैं यौन-कुठाए क्योकि समाज की सबसे अधिक और कठोर वजना यौन को लेकर ही है। समाज म सेक्स सिफ विवाह की अवस्था म पति पत्नी के बीच ही विहित है इससे पहले और इससे बाहर इसकी बिल्कुल अनुमति नहीं। विवाहेतर यौन बुरा है, दडनीय है। लेकिन बच्चा है कि जन्म के साथ ही, प्रवत्ति के रूप मे यौनेच्छाए लेकर आता है। यहा एक बात और समझ लेनी चाहिए

कि फ्रॉयड के सेक्स (लिबिडो) का अर्थ वह प्रवृत्ति है जो अपनी संतुष्टि के लिए एक पात्र चाहती है, जिसका उद्देश्य शरीर-सुख है। यह शरीर-सुख अंतिम रूप में पुरुष जननेंद्रिय के स्त्री जननेंद्रिय के चरम स्पर्श से प्राप्त होने वाली वस्तु है। इस तरह किसी भी पुरुष अथवा स्त्री का विपरीत लिंगीय व्यक्ति की ओर आकर्षण और उससे सुख पाने की इच्छा यौन के अंदर है।

अब चूंकि सभ्य समाज में सिर्फ विवाह के अंदर ही प्रेम और यौन की अनुमति है, उसके बाहर इसे वर्जित माना जाता है इसलिए अगर किसी के अंदर ऐसी इच्छा उठे तो इसे छिपाना पड़ता है, दबाना पड़ता है। यह दमन प्रारम्भिक बचपन से ही होने लगता है। हर बच्चे का प्रथम प्रेम मां से होता है। वह यौन रूप में मां को पाना चाहता है। यानी उससे शरीर सुख पाना चाहता है। जबतक यह सुख जननेंद्रिय के द्वारा नहीं मांगा जाता है तबतक उसपर कोई रोक नहीं होती। लेकिन अगर इसके अंदर जननेंद्रिय कोई पाट खेलना चाहता है तो तुरंत उसे मना कर दिया जाता है। दमन वहीं से आरंभ होने लगता है जो जीवनभर चलता रहता है। इसका कारण यह है कि किन व्यक्तियों के साथ यौन-सुख की कामना की जा सकती है यह भी पहले से निश्चित होता है। इंसेस्ट (निकटतम संबंधियों—मां-बेटा भाई-बहन, पिता-पुत्री के बीच यौन संबंध वर्जित है। इसके अलावा हर उस व्यक्ति के साथ सेक्स की मनाही है जिसके साथ आपका विधिवत विवाह नहीं हुआ हो।

अगर थोड़ी देर के लिए आपका मन फ्रॉयड की इस बात को नहीं भी मानने को तैयार हो कि एक साल-दो साल चार साल के लड़के का यौन प्रेम मां के प्रति हो सकता है (या लड़की का अपने पिता के प्रति हो सकता है) तो भी आप इतना तो मानेंगे ही कि बगैर विवाह के भी अन्य लोगों के प्रति आदमी का आकर्षण होता ही है। जैसे ही लड़के-लड़की जवान होने लगते हैं वे किशोरावस्था में कदम रखने लगते हैं उनका आकर्षण एक दूसरे की ओर होने लगता है। और वे जल्दी ही जान जाते हैं कि यह जो दुदम खिंचाव उस लड़की या उस लड़के की ओर हो रहा है वह पूरी तरह यौन है। वह न सिर्फ अपने प्रिय को देखने, उसकी मीठी बातें सुनने उसे स्पर्श करने की इच्छा तक ही सीमित है बल्कि वह अन्तिम रूप में अपना परिफलन इस रूप में चाहता है कि दोनों परस्पर संभोग करें। यानी यह शतश यौन प्रेम है।

लेकिन समाज इसकी इजाजत नहीं देता। तो अगर कोई ऐसा प्रेम करता है और अपने प्रिय के साथ संभोग की इच्छा करता है तो उसके

अंदर अपराध का बोध होता है। चूंकि ठोक ठोककर उसके अंदर यह विचार पक्की तरह बिठा दिया गया है कि विवाहतर प्रेम और सेक्स बुरा है, पाप है इसलिए प्राकृतिक मांगो के कारण जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति से सेक्स की इच्छा करता है तो उसी समय चेतन (और नही तो अर्द्ध-चेतन रूप मे) अपने को पापी अनुभव करता है। ताकि वह सामाजिक नियमो का उल्लघन नही कर बैठे इसलिए वह अपनी ऐसी इच्छाओ का हर वक्त दमन करने की कोशिश करता रहता है। जितना ही इन्हे पूरी तरह दमित करने मे वह असफल होता है उतना ही उसका अपराध-बोध अधिक होता जाता है। यह प्रक्रिया लगभग जीवन-भर चलती रहती है, क्योकि समाज ने, अपनी सुविधा के लिए चाहे भले ही सिर्फ पति या पत्नी से प्रेम और सेक्स के नियम बनाए हो, प्रकृति ऐसे किसी नियम पर विश्वास नही करती। वह तो हर पुरुष को हर मनचाही स्त्री की ओर और हर स्त्री को हर मनचाहे पुरुष की ओर धकेलती रहती है वह स्त्री या पुरुष उसके लिए चाहे सर्वथा अपरिचित हो या निकट सबधी। ऐसी स्थिति मे यौनेच्छाओ का दमन और अपराधबोध सबसे अधिक होता है।

तान्त्रिको ने इस तथ्य को समझा था। उन्होने मन मे अचेतन के होने की बात नही कही। लेकिन ऐसी वर्जनाओ के व्यक्तित्व पर पडने वाले प्रभाव से वे अवगत थे, जिसका आविष्कार फ्रॉयड ने उनसे हजारो साल बाद किया। इसलिए उन्होने (तान्त्रिको ने) कहा कि चूंकि विवाह के बाहर मथुन वर्जित है और तुम्हारी इच्छाए अन्य स्त्रियो की ओर दौडती ही हैं और तुम इन इच्छाओ को दबाने की कोशिश मे अपना समय और शक्ति खर्च करते रहते हो इसलिए ऐसा क्यों नही करो कि इन इच्छाओ को खुल-कर पूरी कर लो ताकि तुम निश्चिन्त होकर समाधि और परमपद प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सको। तान्त्रिक के लिए तो हर स्त्री, चाहे वह अपनी पुत्री ही क्यो न हो, भैरवी चक्र मे मात्र भोग्या रह जाती है, उसके साथ सम्पूर्ण सभोग के द्वारा ही वह मोक्ष मार्ग पर बढ सकता है।

यौन-कुठाए जीवन और व्यक्तित्व के लगभग सभी अन्य पहलुओ को प्रभावित करती हैं, मानसिक रोग तक पैदा करती हैं। मानसचिकित्सा मे अवदमित (अचेतन रूप मे प्रवृत्यात्मक इच्छाओ को दबाने को मनोविज्ञान मे अवदमन करना कहते है) इच्छाओ को चेतन सतह पर लाकर वयस्क मन द्वारा उनका वास्तविक अर्थ और मूल्य बताने का प्रयास किया जाता है और उनके प्रति तर्कसगत दृष्टिकोण अपनाने की शिक्षा दी जाती है।

मानसचिकित्सा का ही एक रूप है छोटे-छोटे समूहो मे स्त्री-पुरुषो को मिलाकर उनके बीच परस्पर मुक्त रूप मे यौनक्रिया की अनुमति देना।

इस तरह ऐसी समूहचिकित्सा मे सम्मिलित होंने वाले स्त्री-पुरुष यौन वजनाओं से मुक्त होकर प्राकृतिक रूप मे, एक दूसरे को समग्र पाते हैं, उनके सपर्क मे आकर उनका अधिकतम स्पर्श पाकर, अपने अदर किसी तरह के पाप की, अपराध की भावना का बोध नहीं करते और उनका व्यक्तित्व उनका मन हर वजना से ऊपर उठ जाता है, पूरी तरह मुक्त हो जाता है। वे सामान्य, स्वस्थ व्यक्ति बन जाते हैं। ऐसे व्यवहार से अचेतन मे दब पडे आवेशो का विरेचन भी हो जाता है जिसे मनोविश्लेषण मे आब्रेऐक्शन अथवा कथार्सिस कहते हैं। अवदमित आवेश मानसिक तनावो न्यूरासिस और अनेक मनोजन्य शारीरिक रोगों के कारण होते हैं।

तान्त्रिक साधना मे भी यही होता है। ऐसी साधना स्त्री पुरुषों के समूह म जब होती है तो सभी खुलकर परस्पर सभोग करते हैं बीच-बीच म साथी बदलते जाते है किसी को किसी की मनाही नहीं होती। यह वजना मुक्ति और प्राकृतिक इच्छाओं की स्वाभाविक तृप्ति आदमी को अध्यात्म के धरातल पर ले जाता है।

यही बात उस आचार्य ने कही जो बाद म अपने आपको भगवान कहने लगा और अपने आश्रम म उसने आश्रमवासियो के बीच मुक्त सहवास को बढ़ावा दिया।

हम यहा इस आचरण के सामाजिक नैतिक और कानूनी पक्षो की बात नहीं करना चाहते। हमने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है और विज्ञान हर सामाजिक धार्मिक, वैधानिक नियमो से अछूता ऊपर होता है। वह सिर्फ सत्य का सधान करता है।

और यह एक बडा सत्य है कि यौनवजनाओं से मुक्त होकर अगर स्त्री-पुरुष परस्पर एक-दूसरे को पा सकें तो ऐसा पाना (ऐसा सभोग) उन्हें अनुभूति के उच्चतम धरातल पर ले जाने मे समर्थ है। ऐसी अनुभूतियो को आप चाहे तो अलौकिक, आध्यात्मिक भी कह सकते हैं। सभवत ऐसी अनुभूति के क्षण ही समाधि के क्षण हो।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि सभोग से समाधि सभव है।

और आचार्य ने यह कोई नई बात नहीं कही। उसके इस कथन के पीछे उसका तत्रविद्या के साथ ही मनोविश्लेषण का अध्ययन और उसपर उसका विश्वास था। इसलिए उसने अपने आश्रम म सामूहिक सभोग चिकित्सा पद्धति को ठीक उसी तरह अपनाया जैसा उससे बहुत पहले म अमेरिका का एनकाउन्टर ग्रुप करता आया था। हा भाषा म अतर था। शब्दो म अतर था। भगवान हिन्दी-अग्रेजी के आध्यात्मिक ग्रथ बनाने वाले शब्दो का प्रयोग उन्ही अनुभूतियो के लिए करते हैं जिनके लिए मनो-चिकित्सक और मनोविश्लेषक वैज्ञानिक शब्दो का करते हैं।

१०

गुरु की आवश्यकता

आप पूछ सकते हैं कि जब बाजार मे योग पर इतनी-इतनी पुस्तकें उपलब्ध हैं। (जिनमे एक हमारी भी शामिल होने जा रही है) तो इसे सीखने के लिए क्या फिर भी किसी गुरु की आवश्यकता है ?

मैं कहूगा—हा, बावजूद इतनी इतनी हर तरह की पुस्तको और पत्रिकाओ के, योग सीखने के लिए जन सामान्य को गुरु की आवश्यकता है।

लेकिन मैं इससे भी इन्कार नही करता कि आपमे ऐसे अनेक हैं जिन्हे अच्छी पुस्तक के सिवा और किसी गुरु की आवश्यकता नही।

आज से पैंतीस साल पहले, सन् १६४६ ई० मे जब मैंने योगाभ्यास आरभ किया था तो सिर्फ पुस्तको मे पढे अपने ज्ञान के बल पर ही किया था। तब से आजतक मैं नियमित रूप मे योगाभ्यास करता आ रहा हू—राजयोग भी, हठयोग भी लेकिन आजतक मैं योग सीखने के लिए किसी गुरु के पास नही गया। हा, अनेक योगियो, सन्यासियो और योगदर्शन के विशेषज्ञो से प्राय मिलता और विचारो का आदान प्रदान करता रहा हू।

अगर आप उनमे हैं जिन्हे किसी गुरु की आवश्यकता नही तो यह अध्याय आपके लिए नही।

गुरु का अर्थ होता है—अज्ञान का अधकार दूर कर ज्ञान का प्रकाश देने वाला अथवा शिक्षक।

योग के लिए गुरु वह होगा जिसने योग के सबध मे काफी अध्ययन किया हो और जिसे योग साधना का निजी अनुभव है। ऐसे गुरु के पास जाने का खास बडा लाभ यह है कि जो चीज आप पुस्तको से काफी कठिनाई से सीख सकते हैं वह गुरु से आसानी से सीख सकते हैं। पुस्तक पढते हुए अगर आपके मन मे शका उठे तो उसका जवाब पाना कठिन हो सकता है। गुरु से सीखते हुए साथ-के-साथ आप शका-समाधान कराते चल सकते हैं।

योगाभ्यास जितनी सिद्धान्तो की वस्तु नहीं उससे बहुत अधिक व्यवहार की वस्तु है। शब्दो की भाषा और चित्रो के द्वारा जो आसन अनेक बार आप समझ तक नहीं सकते, प्रदर्शन के द्वारा गुरु वह आपको आसानी से सिखा दे सकता है। कोई आसन करते हुए अगर आपसे भूल हो रही है तो उसे ठीक कर देता है।

हर व्यक्ति हर आसन के योग्य नहीं होता। हर किसी की शारीरिक बनावट और स्वभाव अपने ढग के होते हैं। उसकी अपनी खूबियां-खामियां होती है। फिर आपके लिए अपनी मानसिक अथवा शारीरिक समस्यायें भी हो सकती हैं। गुरु आपको कौन से आसन चुनने चाहिए और क्या सयम बरतने चाहिए यह निर्णय कर देता है। वह एक कुशल चिकित्सक का काम करता है। चिकित्साशास्त्र की पुस्तकें बाजार और पुस्तकालयो मे उपलब्ध है। लेकिन फिर भी अपने स्वास्थ्य के लिए आपको डाक्टर के पास जाना पडता है। वैसा ही योग के लिए गुरु के पास जाने की बात भी है।

ये तो व्यावहारिक लाभ हुए। इनसे भी अधिक लाभ गुरु का आपके लिए मनोवैज्ञानिक होता है।

अगर गुरु सच ही ऐसे व्यक्तित्व का मालिक हुआ जिस पर आपकी श्रद्धा हो सके तो आप दोनो के बीच एक इस तरह का मनोवैज्ञानिक सबध बन जाता है जो आपके शैशव काल मे आपका पिता के साथ होता है। इसे आप घनिष्ठता कह लीजिए, लेकिन यह सामान्य घनिष्ठता से बहुत अधिक है, गहरी है। इसे मनोविज्ञान की भाषा मे रैपो (Rapport) कहते हैं। मनोविश्लेषण इसे धनात्मक सक्रमण (Positive Transference) कहता है। इसका अर्थ है किसी व्यक्ति का अपने मानसचिकित्सक के साथ प्यार श्रद्धा भक्ति का वह सबध जो उसका अपने पिता पर था जब वह ६ साल से नीचे का शिशु था और अपने पिता को सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और प्रिय मानता था।

अगर तो गुरु के व्यक्तित्व ने सच ही आपको आकृष्ट किया तो उसके साथ आपका धनात्मक सक्रमण हो जाता है। आप उसी तरह उस प्यार करने लगते हैं जैसे राधा ने कृष्ण को किया था और वैसी ही भक्ति करने लगते हैं जैसी तुलसीदास ने राम के साथ की थी। हर मनोविश्लेषण मे रोगी का इसी तरह का पाजिटिव ट्रान्सफेंस विश्लेषक के साथ होता है। उसकी चिकित्सा मे यह सक्रमण बहुत बड़ा पार्ट अदा करता है और रोग से स्वास्थ्य मे वापस आने मे इससे बहुत लाभ होता है।

ऐसा सक्रमण पुस्तक के साथ सभव नहीं।

अगर आपको अपने गुरु से प्यार हो जाता है, उस पर श्रद्धा भक्ति

होती है तो मानी हुई बात है कि उसपर आपका अदम्य विश्वास भी होगा। उसकी हर बात आपको सही और सत्य लगेगी।

मैंने पहले एक अध्याय मे कहा है कि सम्मोहन का प्रभाव व्यक्ति के अवचेतन पर पडता है। वह सम्मोहक के आदेश को ज्यो-का त्यो ग्रहण और पालन करता है।

गुरु की हर बात पर आपका उसी तरह विश्वास होगा। आप उसकी हर बात को पूणत सत्य मानेंगे। उसके हर आदेश को ग्रहण करेंगे, पालन करेंगे और आपको सारे वे लाभ होगे जिनके होने की बात गुरु आपक कहेगा।

यही रैपो, प्यार श्रद्धा, अवभक्ति अथवा धनात्मक सक्रमण लोगो को ज्योतिषियो, योगियो, तान्त्रिको, गुरुग्रा और आश्रमा की ओर धकेलता है। हर आदमी कही-न कही से कमजोर होता है। हर आदमी की अनेक महत्वाकाक्षाए होती हैं जिन्हें पूरी करनी होती हैं और वे होती नजर नही आती। हर आदमी की कोई-न-कोई मनोवैज्ञानिक समस्या होती है जिसका वह सुलझाव चाहता है। काफी लोगो को पारिवारिक, व्यक्तिगत, मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य सबधी, व्यवसाय, नौकरी, प्रोमोशन तबादला, राजनैतिक लाभ-हानि सबधी समस्याए होती है। काफी लोग तरह तरह की निराशाओ, कुठाओ मजबूरियो के शिकार होते हैं। ऐसे लोग जहा कही भी सहारे की उम्मीद देखते हैं, भागकर वहा जाते हैं। ज्योतिषी, तान्त्रिक, योगी ऐसे लोगो को मदद करने, उनके कष्ट दूर करने, उनकी इच्छाओ की पूर्ति करने का लोभ देते हैं, आश्वासन देते हैं, उनका यश, जो अधिकतर प्रचार के द्वारा अर्जित किया जाता है, लोगो को उनके पास खीच ले आता है। लोग पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ उनके पास पहुँचते हैं। उनकी बताई हर बात को आख मूदकर मानते है। उनके पास जाते हुए जो भी उनका ज्ञान, विद्या, बुद्धि, तकशक्ति होती है, अपने पीछे छोड देते हैं। इसी का फायदा ज्योतिषी, तान्त्रिक, योगी गुरु उठाते हैं। नतीजा यह होता है कि बडे से-बडा राजनेता (नेत्री) प्रधानमन्त्री से लेकर डिप्टी मिनिस्टर और सामान्य नेता तक, उद्योगपति, व्यवसायी, ऊचे-ऊचे अफसर, क्लक, डाक्टर, वकील तक ऐसे लोगो के पास जाते हैं। तन्त्र मन्त्र करते हैं दसो उगलियों में तरह-तरह की अगूठिया पहनते हैं बाजुओ मे ताबीज बाधते है, यज्ञ अनुष्ठान करते हैं और कैबिनेट मे परिवतन से लेकर शपथ-ग्रहण की तिथि तक ज्योतिषियो-तान्त्रिको की राय पर तय करते हैं।

यही कारण है कि लोग हजारो लाखो की सख्या मे किसी महर्षि के आश्रम और सस्थान मे जाते हैं, भावातीत ध्यान की शिक्षा लेते है और

जनित विश्वास का फल है जो अपनी आन्तरिक द्वन्द्वो, तनावो और कुण्ठाओ की उपज है।

यह सारा कहने के बाद भी अन्त मे मैं कहूगा चाहूगा कि अधिकतर लोगो को योग की शिक्षा के लिए अच्छे गुरु की आवश्यकता है और ऐसे गुरु के पास जाने से न सिर्फ आपको योगासन और ध्यानयोग का ज्ञान ही प्राप्त होगा, बल्कि आपको वे सारे आध्यात्मिक लाभ भी होंगे जिनके होने का विश्वास आपको गुरु दिला सके।

११

मानसिक व्याधिया और योग

आपके विचारो, व्यक्तित्व और व्यवहार म ऐसे लक्षण आना जो स्वय आपको तक्लीफ दे और आपके आसपास के लोगा को असामान्य लगे मानसिक व्याधि माना जा सकता है।

अनेक मानसिक बीमारिया ऐसी हैं जिनके बारे मे सिफ बीमार स्वय जानता है, किसी और को इसका पता नही चलता। ऐसी बीमारियो को न्यूरोसिस (Neurosis) कहते हैं। न्यूरोटिक का आम व्यक्तित्व व्यवस्थित होता है और वह परिवार तथा समाज म सामान्य व्यवहार करता है। उस का कष्ट उसका नितान्त अपना होता है। वह अपनी असामान्यता के बारे मे सचेत होता है। हा, कभी कभी उसका व्यवहार ऐसा भी होता है जिसे देख कर अन्य भी उसके उस व्यवहार को असामान्य समझ पाते है। लगातार हाथ-पाव धोने, स्नान करते रहने हर वक्त सफाई मे लगे रहने जसा आचरण (जिसे अंग्रेजी मे वाशिंग मनिया कहते हैं)ऐसे ही न्यूरोसिस मे है। इसे आ सेसिव कम्पलसिव न्यूरोसिस (आवति बाध्यता) कहते है। हिस्टीरिया भी ऐसे ही न्यूरोसिस मे है जिसके दौरो को देखकर अन्य लोग भी इसे मानसिक बीमारी समझ सकते हैं। लेकिन अधिकतर न्यूरोसिस ऐसे हैं जिनके बारे मे कोई तबतक नही जान सकता जबतक आप उसे नही बतावें। तरह-तरह की दुश्चिन्ताए (Anxiety), अकारण भय (Phobia) अवसाद (Depression) आदि ऐसी ही मानसिक व्याधियो मे हैं।

दूसरे प्रकार की मानसिक व्याधिया व हैं जिन्हें अंग्रेजी म साइकोसिस (Psychosis) कहते हैं। इसके रोगी के बाहरी व्यवहार सामान्य से अलग होते है जिन्हे देखकर ही आदमी उसकी बीमारी की बात जान जाता है। साइकोसिस मे रोगी की अपने परिवेश के साथ समजन की शक्ति जाती रहती है उसका यथार्थज्ञान चाहे तो बहुत कम हो जाता है अथवा पूरी तरह लुप्त हो जाता है। ऐसे बीमार को हम पागल कहते हैं और उसके

व्यवहारों को पागलपन। उसका व्यक्तित्व बाहरी दुनियासे सबंध काट कर अपने अंदर की दुनिया (अपने अचेतन) में सिमट जाता है, उसी मे रहने लगता है।

स्किज़ोफ्रेनिया, मैनिक डिप्रेसिव-साइकोसिस आदि इसी तरह के मनोरोग हैं।

मानसिक रोगों के कारण शुद्ध मनोवैज्ञानिक भी हो सकते हैं, जैविक-रासायनिक भी और मिश्रित भी। अगर गिनती से लिया जाए तो अधिकांश मानसिक रोगों के कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं। ये कारण ज्यादातर आदमी के प्रारंभिक शैशव काल म बनते हैं। बच्चे के मन मे अनेक ऐसी इच्छाए उठती हैं जो उसके लिए वर्जित होती हैं। माता-पिता उसके लिए निषि निषेध बताते रहते हैं। उन्हे ऐसी वर्जित इच्छाओं का अवदमन करना पडता है। इनम जिन इच्छाओं आवेशों का तो सफल अवदमन हो जाता है वे अचेतन मन मे जाकर पडे रहते हैं और बडे होने पर व्यक्ति उनसे कभी परेशान नही होता। लेकिन अनेक आवेश इच्छाए सफलतापूर्वक अवदमित नही हो पाती। व्यक्ति के बडे होने पर इस अवदमन मे अगर दरार पड जाए, अचेतन में पडी गुत्थियाए (कम्प्लेक्स) ऊपर आने की कोशिश करने लगें तो प्रतीकात्मक रूप में वे अपने आपको संतुष्ट करने लगती हैं। ये ही न्यूरोसिस के रूप मे प्रकट होती है। ये न्यूरोसिस अवदमन की असफलता और अचेतन के बेसुलझे द्वन्द्वों के कारण होते हैं।

साइकोसिस मे जैविक रासायनिक कारणों के साथ मनोवैज्ञानिक कारण भी रह सकते हैं। इसलिए मानसचिकित्सा न सिर्फ न्यूरोसिस की होती है बल्कि साइकोसिस की भी होती है, जिसमें प्रधान चिकित्सा औषधियों से होती है।

सर्वथा स्वस्थ-सामान्य चले आते व्यक्ति मे भी मानसिक रोग उभर सकते हैं यदि अचानक उसकी परिस्थितियां ऐसी हो जाए जो उसके सामान्य व्यक्तित्व की सहनशक्ति के बाहर हो। अगर किसी को प्रेम मे गहरा आघात और निराशा मिले किसी की इकलौती सन्तान की मृत्यु हो जाए, किसी की लगी लगाई अच्छी नौकरी चली जाए अथवा व्यवसाय मे भयानक घाटा लग जाए तो हो सकता है उसकी सामान्य मानसिक व्यवस्था बिगड जाए और वह न्यूरोटिक अथवा साइकोटिक रोग का शिकार हो जाए।

प्रकृति के होमियोस्टैसिस (Homeostasis) के सिद्धान्त के अनुसार जिस तरह शरीर अपने अंदर असंतुलन की स्थिति पर आप-से-आप संतुलन बना लेने की शक्ति रखता है उसी तरह मन के अंदर भी होमियो-

स्टैसिस की प्रक्रिया चलती रहती है। रोगो के प्रतिकार के लिए भी शरीर और मन म निरापदता (Immunity) और प्रतिरोधक शक्ति (Resistance) स्वाभाविक रूप म हाती है। यह शक्ति हर व्यक्ति मे एक तरह की नही हाती। जिनके अदर यह समुचित मात्रा म होती है वे साघातिक परिस्थितियो म भी अपन आपको सामान्य रख पाते हैं। जिनके अदर यह प्रतिरोधी शक्तिया अपेक्षाकृत कमजोर हाती हैं वे ऐसी परिस्थितियो म टूट जा सकते है शारीरिक अथवा मानसिक रूप म बीमार हो जा सकते है। अगर ऐसी परिस्थितिया नही आती तो अत तक वे स्वस्थ सामान्य रह जाते।

अनेक शारीरिक रोग ऐसे हाते हैं जिनके मूल और प्रधान कारण मनोवैज्ञानिक होते है। इन रोगो के सारे लक्षण शारीरिक होते हैं और कोई भी यह मानने को तयार नही होगा कि ये मनोवैज्ञानिक बीमारिया है। यह नहीं कि एसी बीमारिया के आगिक (Organic)—शारीरिक—कारण नही हो सकते या नही हाते। आगिक कारणो से भी ये बीमारिया हो सकती हैं और मनोवैज्ञानिक कारणो से भी। मनोवैज्ञानिक कारणो से हुई ऐसी बीमारियो को मनो शारीरिक (Psychosomatic) व्याधिया कहते हैं। जिन कम्प्लेक्सो और अचेतन द्वन्द्वो के कारण न्यूरोसिस अथवा साइकोसिस हो सकते हैं उन्ही से मनो शारीरिक बीमारिया भी हो सकती हैं।

जनसाधारण का किसी भी शारीरिक बीमारी के मानसिक कारण से होने की बात पर यकीन नही आएगा। इसलिए अगर उन्हें कोई राय दे कि तुम्हारा जो दमा है या एक्जिमा या गठिया (आर्थराइटिस) है यह मानसिक रोग है और तुम किसी मनोरागचिकित्सक के पास इसकी चिकित्सा कराने जाओ तो उसे ऐसी राय देने वाला ही पागल लगेगा।

कौन सा शारीरिक रोग मानसिक है इसका निरूपण (निदान—Diagnosis) तो विशेषज्ञ ही कर सकता है।

पक्षाघात (Paralisis), सधिवात (Arthritis) अधापन, बहरापन, दमा (Asthma) एक्जिमा, उच्च रक्तचाप (Hypertension अथवा High Blood Pressure) नपुसकता (Impotence) अनेक तरह के हृदयरोग पेट का घाव (Pepticulcer) आदि ऐसे रोग हैं जो अधिकतर मानसिक कारणो से होते हैं और जिनका इलाज मानस चिकित्सा से हाता है। जैसाकि ऊपर भी कह चुके है उपयुक्त सारे रोग आगिक कारणो से भी हो सकते हैं इसलिए उचित और स्वाभाविक भी यही है कि इनके इलाज के लिए आदमी सामान्य डॉक्टरों और विशेषज्ञों

के पास जाए। अनेक समय तो डॉक्टर खुद बता देते हैं कि अमुक बीमारी साइकोसामैटिक है। अनेक समय जब इस तरह की कोई बीमारी इस तरह जीर्ण हो जाती है, पकडकर बैठ जाती है कि सभी जानी मानी औषधि और चिकित्सा का उसपर काई असर नही होता तो डॉक्टर सोचने पर मजबूर हो जाता है कि कही यह मनोवैज्ञानिक तो नही और रोगी को मानस चिकित्सक के पास जाने की राय दे देता है। अगर आरंभ मे ही बीमार मनोरोगविशेषज्ञ के पास जाए (लेकिन ऐसा शायद ही कोई करता है) तो रोग निदान (Diagnosis) के अपने विशेष तरीको से वह बता सकता है कि यह बीमारी मनोवैज्ञानिक है अथवा आंगिक।

मानसिक रागा के जो कारण तो जैवरासायनिक होते हैं (जैसे अवसाद डिप्रेशन मे मस्तिष्क मे सरोटोनिन की मात्रा अधिक हो जाना आदि) उनकी चिकित्सा औषधियों से हाती है ' स्किजोफेनिया भी ऐसे ही रोगो मे है। लेकिन चूंकि अधिकतर मानसिक रोग मनोवैज्ञानिक कारणो से होते हैं (साइकोसिस तक मे ऐसा हाता है) इसलिए उनकी चिकित्सा मानसचिकित्सा की पद्धति से की जाती है। अधिकाश मानसचिकित्सा फ्रॉयड के मनाविश्लेषण पर आधारित है, अगर वह शुद्ध मनोविश्लेषण नही है तो भी। ऐसी चिकित्सा मे अपने-अपने तरीके से, चिकित्सक रोगी के अवचेतन के कम्प्लेक्सो, द्वद्वो अपराध भावनाओ को मुक्त-सयोजन (Free Association) स्वप्नविश्लेषण आदि के माध्यम से चेतन के धरातल पर लाने का प्रयास करता है। शैशव मे जिस इच्छा अथवा व्यवहार का बच्चे ने हाथी जितना बडा समझा था, और उसी अनुपात मे अपराधबोध का शिकार हुआ था, वयस्क होकर जब वह उसके सामने आता है तो वह समझ पाता है कि वह तो नगण्य था, कुछ भी नही था। मानसचिकित्सा म एक बात और होती है। अचेतन मे पडे दबे आवेश, चिकित्सा के दौरान ऊपर आकर अपनी शक्ति समाप्त कर देते हैं। इसे आब्रेऐक्शन, कैथार्सिस (विरेचन) कहते हैं। रोगमुक्ति मे इससे भी बडी सहायता मिलती है। चिकित्सक के साथ चूकि रोगी का धनात्मक संक्रमण (Positive Transference) हुआ रहता है वह चिकित्सक को अपने पिता के स्थान पर रख कर उससे प्यार करता है, इसलिए उसके अधिकतर दमित आवेश चिकित्सक के सपर्क मे आकर सतुष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न उठता है याग मानसिक रोगो के उपचार मे कैसे सहायक हो सकता है।

इसकी प्रक्रिया य हो सकती है

जैवरासायनिक स्नाव शरीरस्थित ग्रथियो से होता है। अगर ता

शरीर स्वस्थ रहे, मन मे द्वद्व और तनाव नहीं हो, तो हर ग्रंथि अपना अपना काम सुचारु रूप से करे और हर ग्रंथिरस अपनी समुचित मात्रा में ही निःसृत हो। रक्त मे प्रविसर्जन की मात्रा भी समुचित हो। लेकिन अनुचित आहार विहार तथा मानसिक तनावो, दुश्चिन्ताओ, परेशानियो और रोगो के कारण ग्रंथियो के कार्यकलाप पर बुरा असर पड़ता है। परिणाम यह होता है कि ग्रंथिरसो के निकलने का सतुलन बिगड जाता है, जिस रस का जितना निकलना चाहिए वह अधिक या कम निकलने लगता है। इससे मस्तिष्क से लेकर शरीर के सारे सस्थान, जैसे रक्तसचार सस्थान, पाचन सस्थान, श्वसन सस्थान, विसर्जन सस्थान आदि, अस्वस्थ रूप मे प्रभावित होते हैं।

योग के विभिन्न आसनो के विभिन्न ग्रंथियो, सस्थानो, मस्तिष्क, नाडियो और पेशियो पर प्रभाव पडते हैं। ये प्रभाव स्वास्थ्यकर होते हैं। इनकी क्रियाओ के असतुलन को धीरे-धीरे कम करते जाते हैं और अतत उन्हे ऐसी जगह पर ले आते है कि वे समुचित रूप मे काम करने लगते हैं। इस प्रकार हानिकारक रसो की मात्रा समाप्त हो जाती है और जो बीमारिया दैहिक अथवा मानसिक, इनकी वजह से होती हैं वे ठीक हो जाती हैं।

ध्यानयोग मानसिक अथवा मनोशारीरिक रोगो मे मानसचिकित्सा का काम करता है। धारणा और ध्यान की स्थिति मे बैठने पर मन मे शान्ति आने लगती है। तनाव कम होते होते समाप्त हो जाते हैं और जैसे जैसे ध्यान मे विचारप्रवाह मुक्त होता जाता है वैसे-वैसे अवचेतन के दमित कम्पलैक्स आवेश, इच्छाए आदि ऊपर आने जाते है। ध्यान की अवस्था मे व्यक्ति अर्द्ध निद्रा जैसी हालत मे पहुच जाता है जबकि न तो वह पूरी तरह बेहोश होता है और न पूरी तरह होश मे होता है। उसकी तर्कशक्ति लगभग सो जाती है, इसलिए ठीक जैसे नींद मे चेतन सेंसर (नियन्त्रक) निष्क्रिय हो जाता है (जिस स्थिति मे धीरे धीरे व्यक्ति मनोविश्लेषण के मुक्त सयोजन मे भी पहुच जाता है), उसी तरह ध्यान मे भी चेतन सेंसर लगभग सो जाता है। तब चेतन मात्र द्रष्टा रह जाता है जो अपने अवचेतन के क्रिया-कलाप को देख सकता है काफी दूर तक समझ सकता है और अपने ढग पर उसे विश्लेषित कर उसके साथ समझौता भी कर सकता है। ध्यान मे इस आत्मविश्लेषण मे व्यक्ति का अपना चेतन ही चिकित्सक का स्थान ले लेता है जिसके ऊपर ही अपने को सतुष्ट कर रोगोत्पादक इच्छाए और आवेश अपनी हानिकारक शक्तिया समाप्त कर देते हैं।

इस तरह ध्यानयोग मानसिक बीमारियो की अच्छी चिकित्सा हो सक्ता है। मैं अपने अनक रोगिया का, जा समय अथवा अथ के अभाव मे पूरी मानसचिकित्सा नही करवा सकते, ध्यानयाग की शिक्षा देता आया हू। मैने देखा है कि काफी लागो का इसम लाभ हाता है। अनेक समय इस प्रकार का याग चिकित्सा की अवधि का काफी कम कर दता है यह अनुभव मैंन किया है।

विज्ञान के दो पक्ष होत हैं—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक। अनेक समय ऐसा होता है कि किसी चीज के सबध मे बनाया हुआ सिद्धात चाहे दो अधूरा है अथवा भ्रात फिर भी उस चीज का व्यवहार मे वही प्रभाव होगा जो प्राकृतिक नियमो के अनुसार उसके लिए निश्चित है। मसलन, एस्पिरीन किन केन्द्रो को प्रभावित करके दद दूर करता है, भले ही इस सबध के प्रवतक के बनाए गए सिद्धात गलत हो, ऐस्पिरीन खाने से दद दूर होगा ही।

उसी तरह, भले ही योग कैसे शरीर या मन के रोग दूर करता है इस सबध के सिद्धात गलत हो, अनुभव बताता है कि उससे काफी सारे शारीरिक तथा मानसिक रोग ठीक होते हैं।

आप ऐसा ही समझकर अपने लिए आसनो और ध्यानयोग का अभ्यास करें, आपको लाभ अवश्य होगा।

१२

शारीरिक रोग, बुढापा और योग

क्या शारीरिक रोग और बुढापा रोके जा सकते हैं ?

क्या मानसिक रोग रोके जा सकते हैं ?

क्या कुछ ऐसा हो सकता है कि आदमी न तो तन से बीमार पड़े, न मन से बीमार पड़े और न बूढा हो ?

अगर ऐसा हो सकता तो दुनिया बहुत कुछ स्वर्ग हो जाती।

दुनिया को इस माने में स्वर्ग बनाया जा सकता है। यानी तन मन के रोग रोके जा सकते है और बुढापे को भी काफी दूर तक रोका जा सकता है।

ऐसा हम स्वास्थ्य के नियमो का पालन कर कर सकते हैं। अगर हम आहार विहार मे सयम बरत सकें अपने आपको मानसिक तनाव और द्वन्द्व पैदा करने वाले वातावरण से अलग रख सकें अथवा ऐसे वातावरण मे भी अपने को सयत और शात रख सके तनावमुक्त रख सकें तो हमारे शारीरिक या मानसिक रूप मे बीमार पड़ने की सभावना बहुत कम होगी। (हम यहा उन बीमारियो की बात नही कह रहे हैं जो हमे चाहे तो उत्तराधिकार मे जन्म के साथ मिली हो अथवा जो वाइरस, कीटाणुओ जीवाणुओ और विषो के कारण होती हो। उत्तराधिकार की बीमारियो को छोड वाइरस, कीटाणुओ और जीवाणुओ और विषो से उत्पन्न बीमारियो से भी हम काफी दूर तक बचे रह सकते हैं अगर हमने अपने आपको, प्राकृतिक स्वास्थ्य के नियम पालन कर, पूरा स्वस्थ रखा हुआ है अपने अदर समुचित मात्रा मे रोगनिरोधक शक्ति एकत्र कर रखी है।)

तनावरहित जीवन या ऐसा दृष्टिकोण ताकि तनावपूर्ण स्थिति मे भी अपने आपको शात और तनावरहित रख सकें (यह निरतर स्वय शिक्षा से सभव है)। स्वस्थ भोजन समुचित व्यायाम हम हमेशा स्वस्थ रख सकते हैं। योगासन सर्वोत्तम व्यायाम है जैसाकि हम पहले भी कह आए हैं।

आसन विभिन्न पेशियों, नाडितन्त्रों और सामान्य और नलिकाविहीन ग्रन्थियों और सस्थानो की गतिविधियो को सन्तुलित करते है। इस तरह शरीर बीमार होने से बच जाता है।

अगर कही कोई बीमारी भी हो तो आसन उन्हे दूर कर सकते हैं।

ध्यान योग मन को शान्त करता है तनाव और द्वन्द्वो से मुक्ति दिलाता है और जीवन और परिवेश के प्रति ऐसा सन्तुलित, स्वस्थ और आध्यात्मिक दृष्टिकोण देता है कि आदमी का मन कभी रोगग्रस्त हो नही हो सकता।

रही बुढ़ापा रोकने की बात तो यह बहुत दूर तक सम्भव है अगर आप शुरू से ही अपने शरीर को नीरोग और पुष्ट तथा सक्रिय रख सकें और दृष्टिकोण ऐसा बना सकें कि आदमी का वृद्ध होना अनिवार्य नही, वह चाहे तो जिन्दगी के अन्तिम क्षणो तक युवा रह सकता है।

यह तो सही है कि हर वस्तु का समय बीतने के साथ कुछ छीजन (वीयर ऐण्ड टीयर) होता है। आदमी के शरीर का, उसके विभिन्न अगो का बहुत कुछ ऐसा ही होता है। विज्ञान यह जानने की कोशिश कर रहा है कि आदमी में बुढापे का क्या कारण है। अधिकतर विज्ञानी इस परिणाम पर पहुच हैं कि समय के साथ, उम्र के साथ, शरीर स्थित नलिकाविहीन ग्रन्थिया सूखती जाती है और उनके होर्मोन (ग्रन्थिरस) के स्राव की मात्रा कम और असन्तुलित होती जाती हैं। इसका असर विभिन्न अगो पर पडता है और इससे शरीर और मन मे जो लक्षण पैदा होते हैं वही बुढापा है।

योगासन ग्रन्थियो को लम्बे समय तक युवा और सक्रिय रख सकते है। साथ ही चूकि मन का प्रभाव सारे शरीर और इसके सस्थानो पर काफी दूर तक है, ग्रन्थियो पर भी है इसलिए अगर कोई व्यक्ति यह निश्चय कर ले (और इस पर विश्वास कर) कि वह कभी बूढा नही होगा, हमेशा शरीर और मन से जवान रहेगा, तो वह कभी बूढा नही होगा। अग्रेजी मे एक कहावत है—पुरुष उतना ही जवान होता है जितना अनुभव करता है। पचास-साठ-सत्तर की उम्र मे भी अगर अपने आपको बाइस-पचीस का महसूस करें, उतना ही स्वस्थ—शरीर से, मन से, बुद्धि से आवेशो से दृष्टिकोण से—तो कोई वजह नही कि आप चिरयुवा नही रह सकें। यह तो आदमी चालीस तक पहुचते-पहुचते सोचने लगता है—अरे, हम तो मध्यावस्था म पहुच गए, हमे क्या ऐसा करना शोभा देता है? ऐसा पहनना शोभा देता है? ऐसे उठना-बठना, चलना फिरना शोभा देता है? ऐसे सोचना रहना शोभा देता है? आदि। यही कारण है कि अपने इस दृष्टिकोण के कारण वह समय से पहले ही अपने आपको वृद्ध बना लेता है।

आप इसके ठीक उल्टे सोचिए। आप अगर साठ के हैं, सत्तर के हैं, अस्सी के हैं फिर भी आप अच्छा खाना खा सकते हैं, शारीरिक श्रम और व्यायाम कर सकते हैं बौद्धिक काम कर सकते हैं, दुनिया के हर सौन्दर्य का रसोपभोग कर सकते हैं, प्रेम कर सकते हैं। अगर आप ऐसा करें और ऐसा करते हुए आत्मसन्ताप और गर्व का अनुभव करें तो कोई कारण नहीं कि आप कभी बूढ़े हों।

योग के आसन और ध्यान ऐसे दृष्टिकोण के साथ मिलकर आपको आयु के लगभग अन्तिम दिनों तक आपको युवा बनाए रख सकने में सक्षम हैं।

१३

जीने के लिए सपने भी चाहिएं

बाइबल मे लिखा है—आदमी सिर्फ रोटी पर नहीं जी सकता।

और यह ठीक भी है। आदमी को भूख तो लगती ही है, उसे ख चाहिए ही। तमाम उम्र उसकी अधिकांश गतिविधियां खाना जुटाने लिए ही होती हैं। खाना, घर, सेक्स—ये उसकी बड़ी-बड़ी आवश्यकत हैं। यह सब उसके अपने लिए चाहिए। फिर अपने परिवार के लिए चाहिए। जब से आदमी काम के लायक होता है तब से अपनी और अप की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में वह लग जाता है और उसका क्रम उसके जीवन के अंतिम दिनों तक चलता रहता है।

लेकिन वह इतने से ही नहीं जी सकता। इतना ही करके उसे सन्त नहीं होता। ये तो उसे अपनी मजबूरियां लगती हैं। और मजबूरि आनन्द नहीं देती। आनन्द वही देता है जो अपनी इच्छा से किया ज भले ही उसकी भौतिक जरूरत हो या न हो।

जैसे जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे अपने आसपास के सस को पहचानता जाता है। आरम्भ में उसके मन में हर कुछ के लिए कुतूहल रहता है। वह हर कुछ को जान लेना चाहता है। उसे हर लुभावना रहस्यमय लगता है। पहचान के साथ-साथ हर कुछ का लुभावन पन, उसकी रहस्यमयता कम होती जाती है। बड़े होते होते तक वह अ परिवेश के अधिकतर पदार्थों से परिचित हो जाता है। उनका रहस्य ल भग समाप्त हो जाता है उनका आकर्षण चाहे तो समाप्त हो जाता है बहुत थोड़ा रह जाता है और जब किसी वस्तु की रहस्यमयता अ आकर्षण समाप्त हो जाते हैं तो उससे आनन्द मिलना भी बन्द हो जा है।

लेकिन आदमी की सुख और आनन्द की भूख आमट होती है। इन अभाव ऊब है, मृत्यु की स्थिति है जो स्वभाव से ही आदमी को नापस है।

ऐसी हालत में आदमी अपनी यथार्थ की दुनिया से अलग रहस्य और आकर्षण ढूंढता है ताकि वहां उसे सुख मिले, आनन्द मिले। तभी बचपन से ही उसे कहानियां अच्छी लगने लगती हैं। कुछ तो ऐसा परिवेश के कारण होता है, क्योंकि माता पिता आदि प्राय उसे कोई नई चीज दिखाते हैं तो उसके साथ कोई-न-कोई कहानी जोड़ देते हैं और कुछ जो सामने दीख रहा है, उतने से ही बालमन सन्तुष्ट नहीं होकर उसके परे भी देखना चाहता है। तभी अगर वह फूल देखता है तो पूछता है, यह कहां से आया। तितली देखता है तो पूछता है, यह कहां जायगी, वगैरह। इसी तरह कहानियां जन्म लेती हैं। बच्चा कहानियां सुनकर खुश होता है कहानियां पढ़कर खुश होता है।

बड़े होने पर भी कहानियों में उसकी रुचि बनी रहती है। जो सामने है जो अगल-बगल है, जो चारों ओर है वह तो वही है जिसे वह बराबर से देखता जानता आया है। वह सारा तो इतना जाना-पहचाना हो गया है कि एकदम नीरस हो उठा है। वही सुबह उठना वही मुंह-हाथ धोकर तैयार होना, उन्हीं लोगों के बीच रहना जिनके बीच पिछली रात सोने के पहले थे वही काम पर जाना, वही लोग, वही काम, वही वातावरण—सारा कुछ वही या उसी जैसा। इन्हें सहना तो सिर्फ मजबूरी है। इनसे ऊब होती है। आदमी बोर होता है।

और वह कहानियों की दुनिया में पनाह चाहता है। वहां उसे वह हर कुछ मिल जाता है जिसकी कल्पना वह कर सकता है। अपनी कल्पना में अपने दिवास्वप्न में हर कुछ पा लेता है जो पाना चाहता है। और कल्पना की वह दुनिया उसे सब-कुछ दे सकती है जो यथार्थ की दुनिया में सम्भव नहीं होता। वह बार-बार उस दुनिया में जाता है, हर बार उसे वहां आनन्द मिलता है सन्तोष मिलता है। सपने की यह दुनिया वह स्वयं बनाये यह भी सुन्दर है, कोई और उसे बनाकर देदे वह भी सुन्दर है।

यही कारण है कि साहित्य उसे पसन्द है कहानियां, नाटक, उपन्यास उसे पसन्द आते हैं फिल्म उसे अच्छी लगती हैं। इनमें उसकी अपनी अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति मिलती है। यह नायक या नायिका या अन्य जो चरित्र भी उसके व्यक्तित्व से मेल खाता है उसके साथ एकात्म स्थापित कर लेता है। कल्पना में उनके सुख-दुख हर्ष रोष रहस्य रोमांस दुस्साहस आदि का यूं अनुभव करता है जानो यह सब स्वयं उसी ऊपर हो रहा है।

अपने परिचित संसार के बाद उससे हटकर उससे ऊपर और भी संसार हो सकता है जहां वह सारा सम्भव है जो अपने वास्तविक

संसार में नहीं है यह कल्पना अथवा ज्ञान उसे अच्छा लगता है। जो लोग उसे इसका विश्वास दिला सकते हैं उनकी बातें उसे अच्छी लगती हैं। अगर वे लोग ऐसे हुए जिनका व्यक्तित्व, जिनकी विद्वता और ज्ञान उसे प्रभावित करने वाले हों तो उनकी हर बात उसे शत प्रतिशत सत्य लगती है। बल्कि जो व्यक्ति उसके अस्तित्व और जीवन के सम्बन्ध मे, जो उसके अनुभव मे है उससे अलग, उससे बढकर, अधिक-से अधिक रहस्यपूर्ण बातें कह सके, उसके ससार से परे वाले ससार का अधिक-से अधिक असम्भव और लुभावना चित्र दे सके वह उसके लिए उतना ही बडा दार्शनिक, और आध्यात्मिक, विद्वान और सवज्ञ प्रतीत होता है।

अतीन्द्रिय, धार्मिक, आध्यात्मिक, अलौकिक दशन बुद्धिमान व्यक्तियो द्वारा उनसे कम बुद्धिमान आदमियो को दिए गए वे सपने हैं जो सिफ इसलिए मान्य होते हैं कि वे जनसामान्य को अपनी दुनिया की ऊ रा ऊपर उठाकर उन्हें आनन्द देते हैं, इस जीवन के बाद शाश्वत आनन्द के वादे देते हैं।

तभी प्राय सभी धम ग्रन्थो मे अजीबो-गरीब कहानिया, चमत्कार और इच्छापूर्ति के असम्भवतम चित्र मिलते हैं। जन-सामान्य दिन-रात सुन-सुनकर, उनपर श्रद्धा करता है, अन्धविश्वास करता है। यहा तक कि उसे अपनी यथाथ की दुनिया ही उस कल्पना की, सपना की दुनिया के आग झूठी लगने लगती है, माया लगने लगती है। और वह उस दुनिया को पाने के लिए भक्ति करता है, पूजा-पाठ करता है, दान धम करता है, भजन-कीतन करता है, साधु महात्माओं के प्रवचन सुनता है, धम ग्रन्थो का अध्ययन करता है, मन्दिर, मस्जिद गिजा जाता है, व्रत-उपवास करता ह, धमशाला बनवाता है। गुरु और तथाकथित योगी और आचाय और महर्षि और भगवान जन सामान्य को ऐसे ही अलौकिक सपने देते हैं कुछ दूर तक कल्पना अथवा ध्यान अथवा समाधि मे उन सपनो के यथार्थ अनुभव के और दूसरी दुनिया मे, मत्यु के बाद, उनके पूरे होने के वादे और विश्वास देते हैं।

और आदमी का यथाथ से ऊबा मन यहा की असफलताओ कुण्ठाओ, दुखो, भयो से घबडाया मन, उस शाश्वत आनद की दुनिया क पीछे भागता है और वह अधिक-से अधिक उसे प्राप्त करने मे, उसे अन्तत प्राप्त करने की आशा और विश्वास मे अपने जीवन मे रस लाने की कोशिश करता है।

योग की अलौकिक सिद्धियों और अन्त में सारे दुखो से छुटकारा

दिलाने के सिद्धान्त आदमी के सपनों को प्रेरित करते हैं, उन्हें रूप देते हैं, उनके पूरे होने के वायदे करते हैं।

मरने के बाद क्या होता है, निश्चित रूप से कोई भी नहीं जानता। कभी जान पायगा या नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन मरने के पहले, इस जीवन में, उसके सम्बन्ध में जो भी सिद्धान्त, चाहे वे योग के हों या किसी और विद्या के, आदमी को सुन्दर, आकर्षक और सुखद सपने दे सकें उनका व्यावहारिक उपयोग तो है ही। उनके हक में इतनी बात तो कही ही जा सकती है।

भाग दो

व्यवहार पक्ष

१४

सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक एव यौन स्वास्थ्य और योग

हमे सुख चाहिए, दु ख नही।
हमे स्वास्थ्य चाहिए, आसू नही।
हमे आनन्द चाहिए, आसू नही।
ये सारे स्वयसिद्ध सत्य हैं।
लेकिन दुर्योगसे हमे हमेशा सुख नही मिलता, स्वास्थ्य नही मिलता, आनद नही मिलत ।
जितना सुख, स्वास्थ्य, आनन्द मिलता है उससे कही बहुत अधिक दुख रोग और रोना मिलता है।
हमे यह पसन्द नही।
हम यह पसन्द करें ऐसा प्रकृति ने हमारा स्वभाव ही नही बनाया।
हम निरन्तर सुख की खोज मे रहते हैं, कभी-कभी जान-बूझकर,

अधिकतर अनजानते। हमारी हर गतिविधि, हमारा हर क्रिया-कलाप सिर्फ इसी उद्देश्य के लिए होता है। हमारा सारा जीवन इसी लक्ष्य को सामने रखकर चलता है।

इसलिए हम हर वही कुछ करने की चेष्टा करते हैं जिसका परिणाम सुखद हो।

लेकिन हमेशा ऐसा नहीं हो पाता। बल्कि अधिकतर ऐसा नहीं हो पाता।

ऐसा क्यों होता है?

इसके कारणों में कुछ तो ऐसे हैं जो हमारे वश में नहीं होते।

उनके सम्बन्ध में हम सचेत हो सकते हैं, उन्हें नियन्त्रित करने की कामना कर सकते हैं। लेकिन, चूंकि वे हमारे नियन्त्रण के बाहर होते हैं, इसलिए हम उनके सम्बन्ध में कुछ कर नहीं सकते।

लेकिन हमारे सुख में बाधक होने वाले काफी कारण ऐसे होते हैं जिनका सारा उत्तरदायित्व हमारा होता है, जिनपर शतश हमारा अधिकार होता है। हमारे काफी दुख हमारे अपने किए का परिणाम होते हैं।

हमारा शारीरिक, मानसिक तथा यौन स्वास्थ्य काफी दूर तक हमारे अपने ऊपर निर्भर होता है। अपने को हर तरह स्वस्थ रखना हमारे वश में है—बशर्ते कि हम ईमानदारी से ऐसा करना चाहें।

आप कहेंगे—यह किस तरह का तर्क हुआ? एक तरफ तो आप कहते हैं कि हम हर तरह सुखी-स्वस्थ रहना चाहते हैं, यह एक तरह हमारे लिए प्रवृत्तिजन्य है और दूसरी तरफ कहते हैं कि हम जानबूझकर अपने आपको स्वस्थ रखना नहीं चाहते! ऐसा कैसे हो सकता है?

विरोधाभास होते हुए भी यह बात सत्य है कि हममें से अधिकांश अपने को ईमानदारी से स्वस्थ रखना नहीं चाहते। या अगर चाहते भी हैं तो ऐसा करने का समुचित प्रयास नहीं करते।

कारण?

चाहे तो आलस्य, गलत शिक्षा और सोचने के कारण भ्रान्त धारणाएं अथवा अपने अन्दर पलते अपराध बोध के कारण अपने आपको सजा देने की अचेतन इच्छा।

प्रकृति ने प्राणी को स्वस्थ रहने के लिए कुछ नियम बनाए हैं। अगर उन नियमों का पालन किया जाए तो प्राणी कभी बीमार नहीं हो।

पशु पक्षी अधिकतर अपनी सहज प्रवृत्तियों से परिचालित होते हैं। उनके पास, हमारी तरह, बुद्धि नहीं होती। उनका आहार विहार उसी तरह होता है जिस तरह, प्रकृति ने, प्रवृत्ति के रूप में, उनके अन्दर प्रेरित

कर दिया होता है। अपनी गतिविधियों के सम्बन्ध में उन्हें चुनाव की स्वाधीनता नहीं होती।

इसीलिए आप पशु-पक्षियों को बहुत कम अस्वस्थ होते, बीमार होते देखते हैं। अगर कोई पशु-पक्षी कभी अस्वस्थ होता है तो वह न तो किसी डाक्टर वैद्य के पास जाता है और न अस्पताल। वह अपना खान-पान स्वतः नियंत्रित कर लेता है और पुनः स्वास्थ्य लाभ कर लेता है।

हाँ कुछ पशु-पक्षी, हमारी तरह अवश्य बीमार होते हैं और उन्हें डाक्टर और अस्पताल की भी आवश्यकता होती है। लेकिन ये हमारे पालतू पशु-पक्षी होते हैं जिनके जीवन हमारे द्वारा परिचालित होते हैं। अगर वे भी जंगलों में होते तो कभी बीमार नहीं पड़ते और अगर कभी अस्वस्थता अनुभव करते तो उपवास और घास या उनकी स्वयंभू बुद्धि जिस जड़ी बूटी की ओर उन्हें प्रेरित करती उसका सेवन कर आप-से आप ठीक हो जाते, जैसा कि घरेलू कुत्ता तक को आप करते देखते हैं।

हम बीमार पड़ते हैं क्योंकि हम प्राकृतिक नियमों का, अपने आहार-विहार में, कदम-कदम पर उल्लंघन करते हैं।

(हम यहां ऐसी बीमारियों की बात नहीं कर रहे हैं जो बाहरी कीटाणुओं आदि के आक्रमण से होती हैं, जैसे हैजा, प्लेग आदि। लेकिन तब इतना जरूर है कि बाहरी रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं आदि से भी वही लोग आक्रमित होते हैं जो कमजोर होते हैं, जिनके अन्दर रोगों से लड़ने की अन्दरूनी शक्ति का अभाव होता है। सर्वथा स्वस्थ आदमी बाहरी बीमारियों से भी बचा रहता है।)

इसलिए शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने का सबसे अच्छा उपाय है कि आप समुचित आहार विहार ही करें। शरीर को सहज सुपाच्य भोजन दें—यह चाहे सामिष हो या निरामिष। उचित मात्रा से न तो कम खाएं और न, स्वाद के लिए, ज्यादा। मेरे एक मित्र कहा करते थे, आदमी के स्वास्थ्य का सबसे बड़ा दुश्मन है स्वादिष्ट भोजन। आप किसी दावत में जाएं। वहां तरह-तरह के सुस्वादु भोजन परोसे जाएंगे। आपकी जबान को खुशी देने वाले तरह-तरह के खाद्य-पदार्थ मिलेंगे। आपके पेट की जगह सीमित है, स्वाद का आनन्द लेने की इच्छा असीम। नतीजा यह होता है कि आपका पेट चाहे जितना भी मना करता रहे, आप जिह्वा के स्वाद के लिए और-और खाते चले जाते हैं।

आप खाइए उतना ही जितना आपका पेट मांगे। बल्कि पेट भरने से कुछ कम में ही खाने से हाथ रोक दीजिए।

न सिर्फ इतना बल्कि अपने आहार को, शरीर की आवश्यकता के

अनुसार, संतुलित करने की कोशिश कीजिए। हमारे शरीर को एक विशेष मात्रा मे शक्करा, चर्बी, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज चाहिए। विभिन्न खाद्यपदार्थों मे इनकी मात्राए अलग अलग होती हैं। एक साधारण कद-काठी के परिश्रमी पुरुष को, सामान्यतया, ३००० कैलोरी की दैनिक आवश्यकता होती है। (कैलोरी अर्थात् ऊष्मा अथवा ऊष्मांक, किसी पदार्थ का ऊष्मा पैदा करने की मात्रा।) अधिकतर बैठकर काम करने वाले पुरुष को लगभग २५-२६०० कैलोरी काफी है। एक सामान्य स्त्री को २२ २३०० कैलोरी चाहिए होती है। हर खाने की कलोरी की मात्रा निश्चित होती है। जैसे दो अण्डो में १६८ कैलोरी, १२ औंस दूध मे २४०, ८ औंस अनाज मे ८००,८ औंस सब्जी मे ३००,२ औंस घी या तेल मे ५१०,१ औंस दाल मे १०० कैलोरी होती है। इन सबको जोड दीजिए तो १८६६ कैलोरी बनती है। आप किसी भी डॉक्टर से पूछकर अपने शरीर के वजन के अनुसार संतुलित आहार का चाट अपने लिए बनवा ले सकते हैं।

आदमी की दैनिक आवश्यकताए, दूसरी तरह, ये हैं

प्रोटीन — हर किलोग्राम शरीर के वजन पर ६० ग्राम। (सामान्यतया ६० ग्राम) गर्भवती तथा दुग्धपान कराने वाली स्त्रियो के लिए वजन के हर किलोग्राम पर डेढ से दो ग्राम तक।

प्रोटीन के स्रोत दाल ढग की चीजें हैं, जैसे हर तरह की दालें, सोयाबीन, मूंगफली आदि। मास, अण्डे सबसे अधिक प्रोटीन देते हैं और यह प्रोटीन निरामिष प्रोटीन से अधिक अच्छा माना जाता है।

वसा अथवा चर्बी—३००० कैलोरी वाले भाजन मे ७५ ग्राम चर्बी होनी चाहिए। पैंतालीस पचास की उम्र के बाद इसकी मात्रा कम कर देनी चाहिए।

शकरा (कार्बोहाइड्रेट)—ऊर्जा के प्रधान स्रोत चर्बी तथा कार्बोहाइड्रेट हैं। ३०० से ५०० ग्राम तक इसकी आवश्यक्ता है।

इनके अलावा विटामिन और खनिज। अगर खाए गए भोजन म समुचित मात्रा मे ये पदाथ नही हो तो उन्हे, डॉक्टर से पूछकर, ऊपर से लेना चाहिए।

(इस तरह के समुचित आहार की सलाह सिफ साधारण अथवा अधिक सम्पन्न लोगो को ही दी जा सकती है जिनके पास मनचाहा भोजन खरीद सकने की ताकत हो। जो मर-खपकर भी अपना और अपने परिवार का पालन नहीं कर सकता ऐसे आदमी से [illegible]लित आहार की बात करना उसका बेहद भद्दा मजाक उडाना है। दुर्भाग्य से, और आजादी के बाद के तीस वर्षों से अधिक के दुःशासन के फलस्वरूप, भारत की आधी से अधिक

जनता जहाँ गरीबी रेखा के नीचे है, जहाँ के अधिकांश लोगों को चौबीस घण्टों में एक बेला भी पेट भर खाना नहीं मिलता उनके जीवित रहते आन पर ही आश्चर्य व्यक्त किया जा सकता है, विद्रोह और क्रान्ति नहीं कर देने पर तरस खाया जा सकता है—उन्हें स्वास्थ्य, संतुलित आहार, योग और शाश्वत आनन्द के उपदेश नहीं सुनाए जा सकते। सच पूछिए तो गरीब तो असली माने में आदमी भी नहीं होता। योग तो क्या, उसके लिए साहित्य, संगीत, कला, सुख कुछ भी नहीं होता। उसके जन्म से लेकर मरण तक एक ही सत्य होता है—रोटी।)

महर्षि वेदव्यास ने, गीता में, श्रीकृष्ण के मुख से कहलवाया है—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति
न चैकान्तमनश्नत ।
न चाति स्वप्नशीलस्य
जाग्रतो नैव चार्जुन।

—अ० ६, श्लोक १६

यानी हे अर्जुन, योग तो उसी का सिद्ध होता है जो न तो अधिक खाता है, न अधिक उपवास करता है, न अधिक सोता है और न लगातार जगता ही रहता है।

योग के सम्बन्ध में व्यास गीता के इसी छठे अध्याय के अगले, १७वें श्लोक में कहते हैं—

युक्ताहारविहारस्य
युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य
योगो भवति दुःखहा।

—अ० ६, श्लोक १७

यानी दुख दूर करने वाला योग तो उसी का सिद्ध होता है जो समुचित आहार और विहार करता है, कर्मों में समुचित चेष्टा करता है और समुचित मात्रा में सोता और जागता है।

अगर अपने आहार विहार में आप यथायोग्य सतुलन रखें तो आपके कभी रोगग्रस्त होने का सवाल ही नहीं पैदा होता। इससे न सिर्फ शरीर नीरोग रहेगा बल्कि मन भी स्वस्थ रहेगा।

शायद आपने अंग्रेजी की वह कहावत सुनी हो जिसमें कहा गया है—स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर में ही रहता है।

ध्यान योग के लिए तो शान्तिपूर्वक स्थिर होकर बैठना चाहिए। अब आप कल्पना कीजिए कि आप सुखासन में बैठना चाहते हैं। पिछली रात

आपने किसी दावत में जरूरत से कुछ ज्यादा ही खा लिया था और अभी भी पेट भारी लग रहा है। या अजीर्ण की वजह से पेट मे दर्द हो रहा है। या रात सेकेंड शो सिनेमा और उसके बाद प्रेमक्रीडा करने के कारण कुछ अधिक देर तक जग गए हैं और अभी आलस्य भी लग रहा है और नींद से आप पूरी तरह जग भी नही पाए हैं। आप ही बताइए, क्या ऐसी स्थिति में आप थोडी देर भी सुखपूर्वक शात बैठ सकेंगे?

इसलिए योग साधन के लिए पहला नियम है अपने आपको पूरी तरह स्वस्थ रखना।

जैसे शरीर बीमार पडता है, वैसे ही अपने ऊपर अत्याचार करने से मन भी बीमार पडता है। या इसे यू कहे कि अपने ऊपर अत्याचार करने से ही मन भी बीमार पडता है। (यहा हम उन मानसिक बीमारियो की बात नही कर रहे जो बचपन के अनुभवजन्य कुठाओ, द्वन्द्वों, गूढपाओ आदि के कारण होती हैं।)

आज की दुनिया स्पर्धा की दुनिया है, महत्वाकांक्षाओ की दुनिया है और न सिर्फ जीने के लिए, बल्कि औरो से आगे बढ जाने के लिए निरतर सघर्ष की दुनिया है। यह दुनिया भौतिकतावाद की है—यहा मन की शान्ति और स्वास्थ्य सबसे कम महत्व रखते हैं। यहा महत्व इसका है कि अगर आपके पास साइकल है और पडोसी के पास स्कूटर तो आपको भी स्कूटर होना चाहिए, अगर आपके पास स्कूटर है और पडोसी के पास कार तो आपके पास भी कार होनी चाहिए, अगर आपके पास स्टैंडर्ड या फिएट या अम्बैसेडर है और पडोसी के पास मर्सीडीज तो आपके पास भी मर्सीडीज होनी चाहिए अगर आपके पडोसी ने अपनी बेटी के ब्याह मे दस हजार खर्च किए हैं तो आपको ग्यारह करना चाहिए और अगर वह तीन लाख खर्च करता है तो आपको कम से कम साढे तीन तो करना ही चाहिए।

आज की दुनिया पैसे की है दिखावे की है। पैसा मिहनत (और बेईमानी) से ही आता है। जितने अधिक पैसे आपको चाहिए उतनी ही अधिक मिहनत (और बेईमानी) आपको करनी पडेगी। और यह दोनो चीजें आपके अन्दर दाब (स्ट्रैस) और तनाव (टेन्शन) पैदा करती हैं। वैसे तो हर काम के लिए तनाव आवश्यक है लेकिन काम पूरा होकर तनाव समाप्त हो तो स्वस्थ है अगर तनाव ज्यों का-त्यों बना रहा तो वह आपको मानसिक (और शारीरिक) रूप मे बीमार डालेगा। आज का आदमी (औरतें भी) अनिद्रा, रक्तचाप, और हृदय रोगो से पीडित है। जबतक आपके अन्दर समुचित मात्रा से अधिक महत्वाकांक्षा रहेगी, स्पर्धा रहेगी,

समय रहेगा तबतक आपके ऊपर दाब रहेगा, तनाव रहेगा। मानसिक तनाव आपके स्नायुओं और पेशियों में तनाव पैदा करेगा। निरंतर बना रहने वाला तनाव आपको मानसिक रोगी बना देगा।

इसलिए आपको समय समय पर जीवन के प्रति, अपने जीवन के प्रति दृष्टिकोण की परीक्षा करते रहना पड़ेगा ताकि आप अपनी महत्वाकांक्षाओं और क्रिया कलापों में संतुलन रख सकें।

आपका यौनस्वास्थ्य भी (चाहे आप पुरुष हों या स्त्री) आपके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का अंग है। अगर आप शरीर और मन से स्वस्थ हैं तो आप यौनरूप में भी स्वस्थ रहेंगे। तरह-तरह की यौन अक्षमताओं (यथा उत्तेजनाहीनता, शीघ्रपतन, नपुंसकता, कामशीतलता वेदनापूर्ण मैथुन आदि) के कारण शारीरिक कम, मानसिक अधिक होते हैं। आप को अनेक ऐसे स्त्री और पुरुष मिलेंगे जो मन और शरीर से सर्वथा स्वस्थ दीखते हैं, लेकिन जो किसी-न किसी प्रकार की यौन-अक्षमता से पीड़ित हैं। इसका कारण प्रधानत मानसिक होना है। लोग डॉक्टरों के पास दौड़ते हैं तरह-तरह की विज्ञापित अविज्ञापित दवाइयां, जड़ी बूटियां खाते हैं तथाकथित "बिजली का इलाज" वालों और हकीमों वैद्यों के फेर में धन और स्वास्थ्य स्वाहा करते हैं। वे समझते हैं, उनके यौन संस्थान में, यौनांगों में या ग्रंथियों (ग्लैंडस) में कुछ कमी है, खराबी है और इनका इलाज कीमती औषधियां, इंजेक्शन और "बिजली" आदि है। दुर्भाग्य से ऐसा नहीं।

अगला प्रश्न होगा—योग इसमें आपकी क्या सहायता कर सकता है?

जैसा हम पहले कह आए हैं—हठयोग शारीरिक स्वास्थ्य लाभ करने का विज्ञान है। समुचित आहार-विहार के साथ अगर आप योगासन करेंगे तो आपकी सारी नाड़ियां, श्वसन पाचन, रक्त संचार और यौन संस्थान, ग्रंथियां (ग्लैंड) आदि तंदुरुस्त होंगे।

ध्यान योग आपको जीवन के प्रति नया और संतुलित दृष्टिकोण देगा, मन को तनावहीन बनाएगा, संतोष और शान्ति देगा।

और जब यह सब होगा तो आप चाहे जिस काम में भी हों, एक स्वस्थ दृष्टिकोण के साथ उसे अंजाम दे सकेंगे। पहले से अधिक कुशलता से ऐसा कर सकेंगे। आपको तनाव से मुक्ति मिलेगी, समय पर अच्छी नींद आएगी और आप हमेशा आनंद में स्थित रहेंगे। सेक्स में आप अधिकतम आनंद ले सकेंगे अपने सहभागी को दे सकेंगे।

और अंत में योग आपको अध्यात्म के शिखर तक ले जाकर आप को मोक्ष दिलाएगा।

शारीरिक, मानसिक और यौन स्वास्थ्य की बात करते हुए अगर हम आदमी मे वृद्धावस्था आने की बात नहीं करें तो यह अधूरी ही रह जाएगी।

बच्चा पैदा होता है, बढ़ता है, किशोरावस्था को लाघकर जवानी म कदम रखता है। यह उसके विकास का सर्वोत्तम स्टेज है। इसके बाद शरीर मे ह्रास होना आरम्भ होता है। मध्यावस्था (प्रौढावस्था) आती है जो बडी तजी से वृद्धावस्था की ओर बढ़ती है और मृत्यु मे समाप्त होती है।

यह प्रक्रिया जहां तक प्राकृतिक है, इसे रोका नहीं जा सकता। लेकिन इसे धीमा किया जा सकता है और इसके प्रभाव को काफी हदतक कम किया जा सकता है।

जसे ही हम चालीस के आस-पास पहुंचते हैं, हम सोचने लगते हैं कि अब तो हम मध्य अवस्था (मिडल एज) मे पहुचे, हमे अब यह करना शोभा नही देता, और ऐसे व्यवहार करना अच्छा नहीं लगता वगैरह यानी हम यह समझने लगते हैं कि हमारी बुढ़ापे की मजिल करीब आने लगी है, हमे अपने आपको उसके लिए तैयार करना शुरू कर देना चाहिए।

बुढ़ापे के लिए तैयार होने का अर्थ हम मानते हैं अपने शौकों को मार देना, और इसके लिए मानसिक रूप मे तैयार हो जाना कि अब हमारी शक्तियां कम हो गई हैं और दिनोदिन और भी कम होती जाएगी।

ऐसे दष्टिकोण के कारण ही हम समय से पहले बुढापे के लक्षण अपने आपम पैदा कर लेते हैं। खुलकर हसो नही, जो करने का मन करे वह करो नही क्योकि लडके लडकियां क्या सोचेंगे, सेक्स से उदासीन हो होते जाओ आदि।

आप अगर यह समझ लें कि प्राकृतिक रूप मे धीमी गति से आने वाला ह्रास इतनी धीमी गति से आता है कि आपकी अधिकाश क्षमताए और शक्तियां लगभग ज्यो की-त्यो बनी रहती हैं और आप-से आप इस तरह से व्यवस्थित होती जाती हैं कि आपको कुछ महसूस नही होता तो आप साठ सत्तर अस्सी के होकर भी हर तरह से अपने आपको स्वस्थ पाएगे। यहां तक कि आपके सेक्स म भी, भले ही उसकी बारम्बारता अपेक्षतया कम हो जाए, पहले की तरह ही आनन्द आता है। बल्कि बढ़ी उम्र की रति का आनन्द पहले की अपेक्षा अधिक गहरा हो जाता है। यही कारण है कि जिस नवयौवना को एक नये युवक और एक पुष्ट प्रौढ के साथ सम्भोग का अनुभव है वह हमेशा प्रौढ को ही पसन्द करती है।

बात शायद आपको विचित्र लगे, लेकिन है सच्ची।

१५
ध्यानयोग

हम यहा ध्यान करने की विधि बता रहे हैं जो मुख्यत पतजलि के योगदर्शन पर आधारित है।

योग की बात कहते हुए हम आरम्भ मे ही कह चुके हैं कि पतजलि चित्त की वृत्तियो के निरोध को ही योग कहते हैं। (योगश्चित्तवृत्ति-निरोध)।

पतजलिविहित योग की साधना के लिए यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वरप्रणिधान) का पालन करते हुए धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करना चाहिए।

धारणा और ध्यान मे यह अतर है कि धारणा मे अपने मन को चारो ओर से खींचकर उसे हृदय अथवा मूलाधार पर एकाग्र किया जाता है और जब यह अभ्यास इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि इसके लिए प्रयास की जरूरत नही पडती तो उसे ही ध्यान कहा जाता है।

ध्यान का अभ्यास जब इतना सुदृढ हो जाता है कि व्यक्ति को अपना बाहर का, कुछ भी होश नही रह जाता, वह पूर्णत विचारशून्य हो जाता है चेतन होते हुए भी जब उसे अनुभव होता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के साथ वह एकाकार हो गया है, वह पूरी तरह आनन्द मे स्थित हो गया है तो इस अवस्था को समाधि कहते हैं।

हमने धारणा से समाधि तक के अभ्यास को ध्यान योग कहा है।

चूकि पतजलि चित्त की वृत्तियो के सम्पूर्ण निरोध (नियन्त्रण) को योग कहते हैं और यह सिर्फ पद्मासन अथवा सुखासन म बैठकर नाक या भौंह या आखें बन्दकर हृदय अथवा नाभि पर ध्यान जमाने से सम्भव नही इसलिए उन्होने पाच यमो और पाच ही नियमो का पालन अनिवार्य बताया है।

आदमी के मन मे तरह-तरह की प्रवृत्तिया हैं, इच्छाए हैं, आवेश हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर है, हिंसा है। अब अगर आपका मन औरो को हानि पहुचाने मे, मारने मे, हिंसा करने मे लगा हो, झूठ बोलने मे आपको हिचक नही हो, लोभ की वजह से चोरी करना चाहते हैं, अथवा करने से बाज नही आते हो, अपनी विवाहिता पत्नी को छोड अन्य स्त्रियो के साथ काम सबध रखना चाहते हो, जरूरत बेजरूरत सामान एकत्र करना चाहते हो तो भला आप ही बताइए क्या आप पदमासन मे बैठ जाने से ही अपने को धारणा या ध्यान मे ले जा सकेंगे।

आप अकेले नही, आप समाज मे रहते हैं जहा आपकी तरह ही लोग हैं। आपके व्यवहारो का उनपर उसी तरह प्रभाव पडता है जैसे उनके व्यवहारो का आप पर पडता है। आपका हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना कई-कई स्त्रियो (स्त्रियो के लिए पुरुषो) के साथ सम्बन्ध रखना और जहा से भी सम्भव हो, सामान बटोर-बटोर कर इकट्ठा करना समाज मे अशान्ति पैदा करता है। इससे आपका मन भी अशान्त होता है। सामाजिक नियमो का उल्लघन करने के कारण आप मे अपराध बोध होता है। आप पाप की भावना से पीडित होते हैं। चोरी व्यभिचार, हिंसा आदि के लिए तरह-तरह के उपाय सोचने पडते हैं ताकि आप अपना उद्देश्य तो पूरा कर लें और सामाजिक निन्दा और दण्ड से बच जाए।

ऐसी स्थिति मे आप कैसे मन को थोडी देर के लिए भी शान्त कर सकते है? और जब बाहरी कारणो से मन शान्त नही होगा तो आप ध्यान मे बैठेंगे कैसे?

जो किसी को नुकसान नही पहुचाता (जो अहिंसक है), जो सत्य बोलता और सत्य ही आचरण करता है, जो किसी का कुछ अपहरण नही करता जो व्यर्थ सचय नही करता जो सयत तरीके पर अपनी यौनमागो की पूर्ति करता है उसे किसी तरह का अपराध अथवा पाप का बोध नही होगा। अपराध बोध विहीन मन शान्ति से ध्यान के लिए बैठ सकता है। उसके मन मे न किसी प्रकार का तनाव होगा और न दाब (स्ट्रैस)।

आप इन यमो का जहा तक पालन कर सकें अच्छा है।

शौच सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान (जिन्हे ईश्वर पर विश्वास है उनके लिए) ऐसे नियम हैं जो भी मानसिक तनाव दूर करने और शान्ति प्रदान करने मे सहायक होते हैं।

लेकिन अगर जिस समाज और परिस्थितियो मे आप रहते हैं उनमे ये सारे यम और नियम का पालन करना सम्भव नही भी हो तो भी ध्यान के अभ्यास से आपको लाभ होगा। हा इतना अवश्य है कि यह लाभ उतना

नही होगा जितना काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर से सवथा मुक्त व्यक्ति को होगा। फिर भी ध्यान का अभ्यास एक ओर जहा आपको शारीरिक तनावो से मुक्त कर मानसिक तनावो को कम करने की ओर ले जाएगा वहा वह आपकी अपराध भावना को विश्लेषित कर उसे कम करने के लिए अपने व्यवहारो मे बदलाव लाने को भी प्रेरणा देगा। ध्यान मे बैठे बैठे आपके जीवन का हर पहलू आपके मन की आखो के आगे गुजरेगा, अन्दर ही अन्दर आप उनकी अच्छाई-बुराई की व्याख्या करेंगे, आप-से-आप आपके अन्दर उन व्यवहारो को बदलने का खयाल आएगा जिनके कारण आपके अन्दर अपराध-बोध होता है और आप मानसिक तनावो के शिकार होते हैं। ध्यान आपको नई जीवनदष्टि देगा। आप अपने काम मे, व्यवहार मे, रोजगार-धन्धे मे, पारिवारिक सामाजिक आचरण मे उन चीजो को छोडने का प्रयास करेंगे, जिनके कारण द्वन्द्व की स्थिति आती है, उलझनें पैदा होती हैं, मुसीबत खडी होती है। प्रवत्ति के रूप मे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर आदमी को मिले हैं, इसमे सन्देह नही। लेकिन समाज मे रहकर आदमी को अपनी प्रवृत्तियो पर नियन्त्रण करना ही पडता है। जो समाज-विरोधी प्रवृत्तियो को जितना अधिक नियन्त्रित करने की शिक्षा अपने आपको देता है, नियन्त्रिन कर सकता है उतना ही वह सुखी रहता है। ध्यान इसमे आपका बहुत बडा सहायक होता है।

ध्यान मे बैठने के लिए आप वह समय चुनिए जब आप पूरी तरह आजाद हो, उस वक्त कोई और काम आपको करना नही हो। सामान्य व्यक्ति दस मिनट से लेकर एक घण्टे तक का समय इसके लिए निकाल सकते हैं। अगर आप एक घण्टे तक ध्यान मे बैठने का समय निकाल सके हो और इतनी देर बैठना चाहते हो तो भी आरम्भ मे ही ऐसा कर सकेंगे यह जरूरी नहीं। थोडी ही देरमें मन बेसब्री से उठने को कहने लग सकता है। अभ्यास नही होने के कारण अग अकडने लग सकते हैं। लेकिन इनसे आपको हताश नही होना चाहिए। पहले दिन आप यह तय करलें कि कम-से-कम दस मिनट आप बैठेंगे। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाए, आप अवधि बढाते जाए। अगर इस तरह एक घण्टे तक बैठ सकें तो अत्युत्तम। लेकिन अगर इससे कम समय तक भी बैठ सकें तो लाभ नही होगा, ऐसी बात नही।

अगर ध्यान मे आप इतनी प्रगति करलें कि पूरी तरह एकचित्त होकर एक घण्टे तक बैठ सकें और आपके पास समय भी हो और इच्छा भी, तो जितनी देर तक आप बैठ सकें, बैठें। कुछ योगाभ्यासी कहते हैं कि लगातार तीन घण्टे बैठने के बाद समाधि की अवस्था आ जाती है। लेकिन

ऐसा कोई बधा नियम नहीं। यह हर व्यक्ति के लिए अलग होता है। कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें प्रारम्भ करने के कुछ दिनों के अन्दर ही अच्छा ध्यान लगने लग जाता है। कुछ का छ महीनों में हो सकता है और कुछ का बरसों में भी नहीं हो पाता। यह हर आदमी की अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं, उसके चेतन-अवचेतन व्यक्तित्व पर निर्भर होता है कि कौन कितने दिनों में सफलता प्राप्त कर पाता है।

लेकिन निरन्तर अभ्यास से हर कोई योग की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है यह निस्सन्देह है बशर्ते कि वह सामान्य स्वस्थ बुद्धि रखता है। मेरा मतलब है कि जो बौद्धिक रूप में सामान्य से नीचे है (अल्पबुद्धि अथवा सर्वथा बुद्धिहीन—Morone या Idiot आदि) उनके लिए कोई भी योग नहीं।

ध्यान के लिए आप कोई साफ-सुथरा एकान्त स्थान चुनिए, जहां बाहरी बाधाओं की सम्भावना अल्पतम हो। घर वालों को कह दीजिए कि जब आप ध्यान में हों तो उस जगह के आसपास जरा कम शोर मचाएं और आपको छेड़ें नहीं।

अब आप सुखासन अथवा पद्मासन में बैठ जाइए। (इन आसनों का वर्णन आपको इस पुस्तक में यथास्थान मिल जाएगा।)

अगर आप पश्चिमी सभ्यता में पले-बढ़े हों, आप योरोपीय या अमेरिकी हों तो आपके लिए सुखासन (पाल्थी) या पद्मासन लगाना कठिन होगा, चूंकि बचपन से ही इस तरह बैठने की आपको आदत नहीं। तो ऐसा नहीं कि आप ध्यान में बैठ ही नहीं सकते। आप कोई आरामदेह कुर्सी ले लें और उसपर बैठ जाएं। दोनों हाथ हत्थों पर (अगर हत्थे नहीं हों तो जांघों पर) रख लें। आपके ध्यान के लिए यह आसन सर्वोत्तम होगा। पतंजलि ने भी स्थिरम् सुखासनम् ही कहा है, किसी विशेष आसन का नाम नहीं लिया है। जिस आसन में सुखपूर्वक स्थिर होकर बैठा जा सके वही ध्यान के लिए योग्य आसन है।

गीता में महर्षि वेदव्यास ने कृष्ण के मुख से ध्यान करने की निम्नलिखित विधि बतलाई है।

न अति ऊंची, न अति नीची, समतल शुद्ध भूमि पर मृगछाला जैसा कोई आसन बिछाकर बैठ जाए और चित्त और इन्द्रियों को वश में करके मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे। (अध्याय ६, श्लोक ११, १२)। ध्यान के समय काया, सिर और गले को सम (एक रेखा में) रखे, शरीर को अचल करे, किसी और ओर नहीं देखते हुए नासिका के अग्रभाग (नासिकाग्रम्) पर दृष्टि जमाकर (कोई-कोई

नासिकाग्र का अर्थ नाक के ऊपर भौंहों के बीच का स्थान लगाते हैं)।
ब्रह्मचर्य में स्थित होकर, भयरहित, शान्त अन्त करण और सावधान होकर
को वश में करके योग का अभ्यास करे (अ०६ श्लोक १३, १४)।

तो आप किसी भी आराम के आसन में बैठ जाए। आप चाहें तो
आँखें नाक की नोक पर या भौंहों के बीच जमा लें या उन्हें बन्द कर लें।
इस तरह चुपचाप बैठकर आप अपने विचारों के प्रवाह को अपनी इच्छा से
चलने दें। तरह-तरह की बातें आपके मन में उठती रहेंगी। अजीबो-गरीब
विचार आएंगे, विचित्र दृश्य दिखाई पड सकते हैं, अच्छे-बुरे विचार आ
सकते हैं, ऊल-जलूल आ सकते हैं, ऐसी-ऐसी बातें आ सकती हैं, ऐसे-ऐसे
शब्द और चित्र आ सकते हैं, जिनके अपने अन्दर होने की आपने शायद
कभी कल्पना भी नहीं की होगी। आप उन्हें निर्बाध आने दें, उन्हें रोकने
की चेष्टा नहीं करें। ऐसा एक दिन होगा,, दो दिन होगा, महीनों हो
सकता है। इससे आप घबडाए नहीं। जैसे बिगडैल घोड़े को छुट्टा छोड
दो तो जिधर जी में आता है तेजी से दौडता रहता है वैसे ही लगाम छोड
देने पर मन भी चारों ओर भागता है। लेकिन कितना भी बदमाश और
चपल घोड़ा दौड़ते-दौड़ते कभी-न-कभी थककर रुक जाता है वैसे ही धीरे-
धीरे मन की चचलता समाप्त हो जाती है। उसके जो विचार, जो आवेग
अन्दर जमकर उद्विग्न होते रहे थे, इस तरह कालक्रम में ऊपर आकर अपना
तेज खो देते हैं, मन शान्त हो जाता है।

अगर इसके विपरीत आप आरम्भ से ही अन्दर से उठते विचारों को
दबाने की कोशिश करेंगे तो एक तो आपके ध्यान का सारा समय और श्रम
इसी में लग जाएगा, दूसरे जो विचार पहले से ही मन के अवचेतन में दबे
हुए हैं और प्रतीकात्मक रूप में अपने को सन्तुष्टि देने के क्रम में आपके
चेतन को परेशान करते रहते हैं वे उतने ही सबल और सक्रिय रह
जाएंगे। जैसे मवाद जमे घाव को काटकर उसे बह जाने देने से स्वास्थ्य
मिलता है वैसे ही अचेतन के दबे विचारों-आवेगों को निकल जाने देकर
मानसिक स्वास्थ्य और शान्ति पाई जा सकती है।

पहली अवस्था में इस तरह ध्यान में बैठने से एक समय ऐसा आ
जाएगा जब विचारों का आना कम होते-होते लगभग समाप्त हो जाएगा।

तब आप किसी एक बात पर, एक वस्तु पर, एक विषय पर ध्यान
जमाने का अभ्यास आरम्भ कर सकते हैं। तब मन को एकाग्र करने में
आपको सफलता मिल सकती है।

प्रश्न होता है आप किस बात पर ध्यान जमाए ?

यह तो आपकी अपनी रुचियों पर निर्भर होगा। अगर तो आप ईश्वर

पर विश्वास करते हैं, या किसी विशेष देवी-देवता को मानते हैं तो आप उन्ही पर ध्यान जमाइए। गीता मे कृष्ण ने अपने ऊपर चित्त को स्थित करके ध्यान करने की राय दी है। आप राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद, जरथुश्त किसी पर भी ध्यान जमा सकते हैं। आप अगर ईश्वरादि नही मानते तो अपनी प्रेमिका(प्रेमी) पर ध्यान जमा सकते हैं। ध्यान के अन्य विषय हो सकते हैं अच्छे प्राकृतिक दृश्य, नदी, पहाड, जगल, समुद्र आदि। तत्त्वमस्ति (तुम वही हो), अहम् ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हू), सर्वं खल्विद ब्रह्म (सब कुछ ब्रह्म है), अनलहक (मैं वह हू अथवा मैं ब्रह्म हू) आदि।

तत्त्वमसि अथवा अहम् ब्रह्मास्मि आदि मन ही मन कहते हुए जो भावना, अथवा कल्पना की जाती है उसमे व्यक्ति सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माड के साथ अपने-आपको एकाकार अनुभव करता है। इस तरह उसकी व्यक्तिगत सीमाए समाप्त हो जाती हैं और वह अतिम सत्ता (यह चाहे जो कुछ हो) के साथ अपने को एक देखने लगता है।

पता नही हमारी यह पृथ्वी कब और कैसे बनी थी। यह भी पता नही कि इस पृथ्वी की तरह ही जो लाखों करोडो अन्य ग्रह हैं, तारे हैं, नक्षत्र हैं ये सब कब बने थे। हो सकता है कि हर कुछ का कभी-न कभी आरम्भ हुआ हो। यह भी हो सकता है कि इनमे अनेक हमेशा से रहे हो। यह भी हो सकता है कि आरम्भ मे मात्र शून्य आकाश रहा हो। आकाश मे कभी चेतना आई हो जो उसी का एक अग हो। यह चेतना भी ऊर्जा का ही रूप रही हो। इसी ऊर्जा ने ठोस रूप लिया हो और कालक्रम मे इतने इतने ग्रह, नक्षत्र, तारे बन गए हों। किसी भी ठोस पदार्थ को विश्लेषित करते जाइए, उसके टुकडे करते जाइए तो लघुतम अणु को तोडने के बाद जो बच जाता है वह इलेक्ट्रोन और प्रोटोन ही तो है। चूकि हम देखते हैं कि ठोस पदार्थ के बगैर, शरीर के बगैर चेतना सक्रिय नही हो सकती इसलिए यह माना जा सकता है कि चेतना को काम करने के लिए एक ठोस पदार्थ का साथ चाहिए।

मैं वही हू, अथवा मैं ही ब्रह्म हू का ध्यान करते हुए सम्भव है कि चेतना अपने प्रारम्भिक रूप मे पहुच जाए, वहां चला जाए जहां से उसका आरम्भ हुआ था। हर व्यक्ति कभी-न-कभी पैदा हुआ होगा, भले ही शून्य से वह अमीबा के रूप मे ही क्यो न हुआ हो। यह पृथ्वी जब बनने लगी हो, सम्भव है उसकी यह चेतना मूल रूप मे उस समय मौजूद रही हो और उसने देखा हो, किस तरह तेजी से घूमते सूर्य के टुकडे छिटके हों जिनमें से एक पृथ्वी बन गई हो जिसमे गैस हो, और बेहद गर्मी हो जो आहिस्ता-आहिस्ता ठडी होती गई हो आदि। बहुत दिनों के बाद जब पहला प्राणी

पृथ्वी पर बना हो तो जिस एककोशी प्राणी से आगे चलकर उसके पूर्व पुरुष बने हों उस समय से आजतक उसके जितने भी जन्म हुए, जितने रूपो मे हुए—अमीबा, थलचर, जलचर, आकाशचर आदि से होते हुए बन्दर, अन्त में मनुष्य—उन सबके अनुभव उसे हुए हो और सारा कुछ लेकर ही वह एक व्यक्ति के रूप में अब पैदा हुआ हो। (हर व्यक्ति अपने माता-पिता से पैदा हुआ है, जो अपन माता पिता से पैदा हुए थे, जो अपने माता-पिता से पैदा हुए थे ।)

अत यह सम्भव है कि ध्यान जब पूरा होने लग जाए, अपनी प्रगाढ़ता मे पहुचने लगे, तो व्यक्ति को अपने अचेतन तथा पराचेतन (Superconscious) मे पड़ी सारी सामग्री दीखने लगे, उनका ज्ञान होने लगे। शायद समाधि की यही अवस्था हो।

बड़े-बड़े योगियों के बारे मे कहा गया है कि जब वह लगभग योग के अंतिम सोपान पर पहुच जाते हैं तो उन्हे उनके इष्टदेव दिखाई देते हैं। यह सम्भव है। यह एक प्रकार का भ्रम (Hallucination) है। इसकी खूबी यह है कि बगैर किसी बाहरी आधार के आदमी को कुछ दिखाई दे (दृष्टिभ्रम) अथवा किसी की आवाज सुनाई दे (श्रुतिभ्रम) आदि। जिस व्यक्ति का जिस देवता या देवी, या ईश्वर के जिस रूप पर आस्था होगी उसे वही दिखाई देगा। काली के भक्त को काली, राम भक्त को राम, ईसा भक्त को ईसा ही दिखाई देंगे। काली, राम, ईसा आदि के सम्बन्ध में उसका जो मानसिक चित्र होगा दिखाई देने पर वे वैसे ही रूप मे दिखाई देंगे। इस सत्य को तुलसीदास ने यूं कहा है—

जाकी रही भावना जैसी
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

तभी कहते हैं, एक बार कृष्ण की मूर्ति के सामने तुलसी ने तभी सर झुकाया जब वह उन्हे राम के रूप मे दीखे। (तुलसी मस्तक तब झुके जब धनुषबाण लो हाथ।)

ध्यान की अवस्था मे इसी प्रकार आपको ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं।

मृत्यु के भय ने ही मोक्ष की कामना आदमी के अन्दर पैदा की है। ध्यान मे बैठे-बैठे एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब सारे सासारिक बन्धन व्यर्थ लगने लगते हैं, व्यक्ति का अन्तिम सत्य, चरम सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। तब न तो उसके लिए कहीं सुख रह जाता है, न दुख, न जन्म, न मरण। वह इन सबके ऊपर उठ जाता है। ऐसी अवस्था मे जो अनुभूति रह जाती है वह चाहे तो परमानन्द की होती है अथवा अनुभूति-हीनता की। अगर परमानन्द (ब्रह्मानन्द) को ही आप मोक्ष मानें तो यही

मोक्ष की अवस्था है।

ध्यान (जिसे चीनी चान कहते हैं और जापानी ज़ेन) एक और ऐसी चीज़ देती है जो सिर्फ इसी में सम्भव है। हम अपने हर सुख अथवा आनन्द के लिए बाहरी वस्तुओं पर निर्भर होते हैं। उदाहरण के लिए आप यौन आनन्द की ही बात ले लीजिए। इसकी प्राप्ति के लिए आपको एक प्रेम-पात्र (पात्री) चाहिए जो आपको सुलभ हो। आपके शरीर में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि आप उसके साथ प्यार कर सकें, रति संलग्न हो सकें। यह हमेशा सम्भव है कि आपका प्रेमपात्र आपको छोड़ जाए, उसका सौन्दर्य समय के साथ कम अथवा नष्ट हो जाए और आपके लिए उसका आकर्षण कम अथवा समाप्त हो जाए, आपका शरीर आयु के बढ़ने के साथ अपनी क्षमता और शक्ति खोता जाए और आप इतने वृद्ध हो जाएं कि सुन्दरतम, युवा प्रेमपात्र भी आपके अन्दर उससे आनन्दोपभोग करने की शक्ति का संचार नहीं कर सके।

ये आपके शरीर की प्राकृतिक सीमाएं हैं। जो जन्मता है वह वृद्ध भी होता है, शक्तियां उसकी क्षीण होती हैं। तभी तो वह एक दिन मर भी जाता है, वर्ना हर कोई अमर हो जाता।

ध्यान में आप इन सारी स्वाभाविक सीमाओं को तोड़ सकते हैं। अपने आनन्द के लिए किसी बाह्य वस्तु, बाहरी प्रेमपात्र अथवा अपनी शारीरिक क्षमताओं पर आपकी निर्भरता समाप्त हो जाती है। यह आत्मरति की, आत्मानन्द उपभोग की स्थिति होती है। आप इसे रति का आनन्द कह लें अथवा ब्रह्मानन्द। इस आनन्द को प्राप्त करना योग का अन्तिम लक्ष्य है। अपनी प्राकृतिक सीमाओं के बन्धन से मुक्ति ही तो मोक्ष है।

इस अध्याय को समाप्त करने के पहले हम योग द्वारा प्राप्त होने वाली सिद्धियों की बात कहना चाहेंगे। अनेक योगी मानते आए हैं कि योग द्वारा पूर्ण समाधि की प्राप्ति के क्रम में योगी को कई प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं जिनकी संख्या आठ बताई गई है। जैसे आपके शरीर का इतना हल्का हो जाना कि आप हवा में उठ जाएं, अथवा इतना भारी हो जाना कि दस आदमी भी आपको हिला नहीं सकें, अथवा जहां आपकी इच्छा वहां सशरीर पहुंच जाना (इसे अंग्रेजी में Astral Travel कहते हैं) अथवा आपकी जो भी इच्छा हो उसे पूरा कर लेना आदि।

हमने आजतक ऐसा कोई सिद्ध व्यक्ति नहीं देखा। जिनके चमत्कारों की बातें सुनने-देखने में आती हैं उनके चमत्कारों को जादू के ट्रिकों के रूप में समझा जा सकता है जिसका अभ्यास कोई भी व्यक्ति जादू विज्ञान के द्वारा कर सकता है।

योग से इतनी सिद्धि मिलने की सम्भावना अवश्य हो सकती है कि आपके अन्दर की सोई हुई टेलिपैथी अथवा साइकोकाइनेसिस की शक्तियां जाग्रत हो जाएं और आप दूर बैठे व्यक्ति के मन की बात जान जाएं उसे अपनी बात बिना उसके पास गए अथवा बोले बता दें, या बगैर शारीरिक गति दिए आप किसी वस्तु को प्रभावित कर सकें, जैसे चलती हुई घड़ी की सुइयां रोक देना आदि। इसे आप अपने परावेतन का सक्रिय होना मान सकते हैं।

रही बात भूत और भविष्य के ज्ञान की, तो कुछ दूर तक यह भी सम्भव है। भूत तो वह है जो हो चुका है इसलिए यह कहा जा सकता है कि आप पर गुज़रा हुआ और आपके पूर्वपुरुषों पर गुज़रा हुआ हर कुछ आपके अचेतन में स्मृतिचिह्नों के रूप में मौजूद है। योग आपको इतनी शक्ति दे सकता है कि आप उनसब को पुनः देख सकें, ठीक उसी तरह जैसे आप अपने ऊपर बीती घटनाओं को इच्छानुसार याद कर सकते हैं।

जो हमारे लिए भविष्य है हो सकता है कि हमारे समय के ज्ञान के सीमित रहने के कारण ही वह हमें ऐसा लगता हो। काल के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान इतना थोड़ा, इतना अधूरा है कि हम अपने अत्यन्त निकट को ही समझ सकते हैं। अभी जो हो रहा है यह तो हमारा वर्तमान है, अभी होकर जो गुज़र गया वह भूत है और अभी के बाद जो होने वाला है वह भविष्य होगा। आइन्स्टाइन तक ने इस कालज्ञान को गलत साबित कर दिया है। अगर आप अपने से ऊपर होकर देखने की कोशिश करेंगे तो काल का आयाम बहुत विस्तृत प्रतीत होगा। एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि आप खड़े होकर ज़मीन पर रेंगती एक चींटी को देख रहे हैं। अभी वह उधर से इधर आई, चीनी के एक कण को उठाया और आगे बढ़ी कि उधर से आते एक व्यक्ति के पांव तले दबकर मर गई। चींटी के लिए उधर से आना भूतकाल में हुआ, चीनी का कण उठाकर बढ़ना वर्तमान में और उसका दबकर मर जाना भविष्य में होना था। लेकिन आपके लिए यह सारा एक साथ, कुछ क्षणों में, वर्तमान में, हुआ।

इस तरह हम देखते हैं कि काल का ज्ञान भी सापेक्ष है और वह हर किसी के लिए अलग-अलग है।

यह सम्भव है कि योग की चरम अवस्था में पहुंचकर सारा काल आपकी आंखों के आगे आ जाए, आपके लिए हर कुछ वर्तमान ही हो जाए, जैसे ईश्वर के लिए होगा (अगर कोई ईश्वर हो)। उसके लिए शून्य से लाखों-करोड़ों ग्रहों, नक्षत्रों आदि का जन्म लेना, लाखों-करोड़ों वर्षों तक रहना, आपस में टकराकर या स्वयं विस्फोट करके समाप्त हो जाना, किसी

भी पृथ्वी पर की सारी घटनाएं, युद्ध और शान्ति और संहार और निर्माण, जो पृथ्वीवासियों के लिए बड़ी-बड़ी घटनाएं होंगी, हमारे कल्पित ईश्वर के लिए सामान्य और वर्तमान की चीजें होंगी।

इसे आपके कालातीत होने की अवस्था कहा जा सकता है।

यह समाधि के द्वारा कैवल्य प्राप्ति की अवस्था है।

काल के बंधनों से छूटकर आप कर्म, पाप पुण्य, जन्म मरण आदि के सारे बंधनों से, हर अंधविश्वास से, हर भय से मुक्त हो जाते हैं।

आपको मोक्ष प्राप्त हो जाता है, निर्वाण मिल जाता है।

१६

और अब आसन

योग को दो भागो मे बाटा गया है—राजयोग(अथवा मानसिक योग) और हठयोग (अथवा शारीरिक याग)।

राजयोग के सबध मे हमने आपका पिछले अध्याय मे बतलाया है। अब हम आपको हठयोग की बातें बतलाने जा रहे हैं।

हठयोग में आसन प्राणायाम, मुद्रा और बध आते हैं।

आसन शारीरिक व्यायाम हैं जो शरीर को विशेष-विशेष स्थितियों मे कुछ कुछ देर रखकर किए जाते हैं। आसनो मे हमारे शरीर की कुछ पेशियों का प्रसारण होता है और उनके विपरीत पेशियो का सकोचन। हमारे शरीर के सारे क्रिया कलाप पेशियो के सकोचन-प्रसारण के द्वारा ही चलते हैं।

जैसाकि हम पहले भी कह चुके हैं, पेशियों को सकुचित प्रसारित स्थिति मे सात सेकड स्थिर रखने से वे पुष्ट होती हैं। इसे आइसोमेट्रिक्स का सिद्धान्त कहते हैं।

अधिकतर योगी एक-एक आसन को काफी-काफी देर (यहा तक कि आधा घटा, एक घटा, डेढ घटे) तक करने को कहते हैं। इस सबध मे हम पहले काफी विस्तार से लिख चुके हैं और हमने बतलाया है कि दो-एक आसनो को छोड कर, जैसे सर्वांगासन और शीर्षासन, बाकी सभी आसनों को मात्र सात सेकड करने से ही सर्वाधिक लाभ होता है। आप किसी भी आसन मे सिर्फ सात सेकड रहे, फिर मूल स्थिति मे आ जाए फिर उसे दुहराए, तिहराए। आपने अपने लिए जितनी देर आसन करने का निश्चय किया हो उतनी देर मे जितने आसन करना चाहते हो, सात सेकड के हिसाब से हरेक की सख्या तय कर लें। मसलन, अगर आप सर्पासन एक मिनट तक करना चाहते हैं तो हर आसन के बाद सात सेकड के विश्राम के साथ करने से यह सख्या चार होगी।

सर्वांगासन और शीर्षासन आप लगातार एक से दस मिनट तक कर सकते हैं। इन आसनों में चूंकि व्यक्ति का सर नीचे होता है और धड़ ऊपर इसलिए गुरुत्वाकर्षण के कारण मस्तिष्क को अधिक रक्त मिलता है। मस्तिष्क को काफी ऑक्सीजन की मात्रा मिले तो वह वृद्धावस्था तक स्वस्थ और सक्रिय रहता है। यही कारण है कि दीर्घायु (सौ से सवा सौ, डेढ़ सौ साल तक के) व्यक्ति वही पाए गए हैं जिन्होंने शारीरिक श्रम करना कभी नहीं छोड़ा। शारीरिक श्रम करने से शरीर में रक्त-संचार अधिक होता है। यह रक्त मस्तिष्क में भी अधिक मात्रा में पहुंचता है। मस्तिष्क की नाड़ियों को अधिक ऑक्सीजन मिलता है। इससे मस्तिष्क बूढ़ा नहीं हो पाता। सर्वांगासन और शीर्षासन में काफी रक्तसंचार और ऑक्सीजन जाने से मनुष्य वृद्धावस्था को रोक पाता है। अपने अन्तिम समय तक स्वस्थ, सक्रिय रह सकता है।

एक प्रश्न होता है कि आसन करने का सर्वोत्तम समय कौन-सा हो सकता है। आसन हड़बड़ी में करने की चीज़ नहीं, इसे आप तभी कीजिए जब आपको इत्मिनान हो। ऐसा आज के व्यस्त जीवन में सबसे सुविधा से आदमी सुबह के समय ही कर सकता है।

अगर अभी आप सात बजे उठते हैं और आपका सारा समय ऑफिस या काम पर जाने के लिए तैयार होने में लग जाता है, और आप आरंभ में दस मिनट, बाद में आधा घंटा आसन करना चाहते हैं तो आप सात बजे से दस मिनट या आधे घंटे पहले उठने की आदत डालें।

वैसे तो कहा जाता है कि सुबह से सन्ध्या का समय आसनों के लिए बेहतर रहता है, क्योंकि सुबह के समय हमारी पेशियां कुछ अकड़ी रहती हैं और शाम के वक्त ढीली। लेकिन यह बहुत बड़ी अड़चन नहीं। आसन आरंभ करने के पहले अगर आप अपने अंगों को थोड़े झटके दे दें तो आपका शरीर आसनों के योग्य हो जाएगा।

आसन पेशियों को पुष्ट करते हैं, रक्तसंचार बढ़ाते हैं, पाचन संस्थान, यौन-संस्थान, नलिकायुक्त और नलिकाविहीन ग्रन्थियों आदि को प्रभावित कर उन्हें अधिक सुचारु रूप से काम करने की शक्ति देते हैं।

स्वस्थ शरीर न सिर्फ अधिक काम करने की शक्ति से युक्त होता है बल्कि वह यौन-क्षमता और आनन्द में वृद्धि करता है मन को शान्ति देता है तनाव समाप्त करता है और विश्राम में गहरी नींद का कारण बनता है।

आप चाहे जिस काम में हों—नौकरी में, व्यवसाय में, खेल-कूद में मनन-चिन्तन के द्वारा ज्ञान-विज्ञान के अनुशीलन में, आध्यात्मिक अनुभवों और मोक्ष की दिशा में अग्रसर होने में—आसनों से आपको पूरा लाभ होगा

आसन के लिए आप कोई एकान्त स्थान चुन लें और परिवार के सदस्यों को उस समय आपको बाधा पहुंचाने से मना कर दें।

आसन खाली पेट में करें। सुबह उठकर, शौचादि से निवृत्त होकर आसनों का अभ्यास करें। अगर आप शाम को आसन करना चाहते हों तो आसन के समय से कम-से-कम एक घंटा पहले तक आपने कुछ नहीं खाया हो तो अच्छा।

आसन करने के आधे घंटे के बाद आप खा सकते हैं।

स्त्रियां वे सारे आसन कर सकती हैं जो हम आगे बता रहे हैं। हां, गर्भवती स्त्री को तीसरे मास तक तो कोई भी आसन करने की मनाही नहीं। बाद में पांचवें महीने तक कुछ चुने हुए आसन ही कर सकती है। पांचवें महीने से बच्चे के जन्म तक उसे कोई भी आसन नहीं करना चाहिए। प्रसव के एक महीने के बाद फिर से आसन आरंभ किए जा सकते हैं।

तीसरे महीने तक भी गर्भवती यदि आसन करे तो यह ध्यान रखे कि किसी आसन से पूर्वस्थिति में आने अथवा उस आसन में आने में शरीर को झटका नहीं लगे।

आसन आपके स्वास्थ्य के लिए लाभकारी अवश्य हैं, लेकिन इनके साथ ही आपको अपने अन्य आहार-विहार को भी संतुलित करना अनिवार्य है। आप न तो अधिक खाएं न, कम खाएं, न तो अधिक सोएं न अधिक जागें। जो खाएं वह पुष्ट हो इसका उपाय करने की चेष्टा करें। इस संबंध में हम एक पिछले अध्याय में विस्तार से बता चुके हैं।

स्नानादि के द्वारा शरीर को साफ-सुथरा रखें।

काम में तनाव से बचने की कोशिश करें। यद्यपि आसन आपका तनाव कम करने में आपकी बहुत मदद करेंगे, फिर भी आपको अपना मानसिक तनाव अल्पतम रखने के लिए एक दृष्टिकोण बनाना होगा, इसके लिए प्रयास करना होगा।

आप अधिक से अधिक मन को शिथिल छोड़कर, ढीला छोड़कर, काम करने की कोशिश करें। कुछ सोचते हुए, कुछ करते हुए, कुछ फैसला लेते हुए, लोगों से बातें करते हुए, बोर्ड की मीटिंग में विचार-विमर्श करते हुए अथवा बोलते हुए, तनावपूर्ण मत बने रहिए। कोशिश कीजिए कि तनाव-विहीन होकर, मन को ढीला छोड़कर, रिलैक्स्ड होकर हर काम करें। अगर आप सोचकर तय कर लें कि जो भी करेंगे तनावहीन होकर ही करेंगे तो आहिस्ता-आहिस्ता आपको इसका अभ्यास होता जाएगा। अगर आसनों के साथ आप थोड़ी देर ध्यान में बैठा करें तो काम के समय में भी शिथिल होने में आपको मदद मिलेगी। तब आपको नींद की गोलियां और

ट्रैन्क्विलाइजर नही खानी पड़ेगी। आसनो और ध्यान के अभ्यास आपको इस योग्य बना देंगे कि आपको काम मे किसी तरह का तनाव नही होगा। आप पूरी दक्षता से अपने काम को अजाम दे सकेंगे। जब आप सोने जाएगे तो आसाना से और गहरी नीद आ जाया करेगी। आपको न तो पेप्टिक अल्सर होगा और न उच्च रक्तचाप या हृदयरोग।

अगर आपको अल्सर हो, आथराइटिस हो, मधुमेह हो, उच्च रक्तचाप हो, हृदय के अन्य रोग हो तो आसनों और ध्यान के अभ्यास से रफ्ता रफ्ता वे ठीक हो जाएगे और आप पूरी तरह स्वस्थ हो उठेंगे। अगर आपकी यौन-क्षमता कम हो गई हो, रुचि कम हो गई हो, आनन्द कम हो गया हो तो आपकी रुचि, क्षमता और आनन्दोपभोग की शक्ति बढ़ जाएगी।

अगर आप किसी प्रकार के मानसिक रोग से पीड़ित हो सो आसन और ध्यान उनसे छुटकारा दिलाने में काफी हद तक सहायक होगे।

उठने, बैठने, चलने, फिरने मे आप अपने शरीर को समुचित रूप मे सीधा रखने की कोशिश किया करें। अनेक लोग कुर्सी पर या जमीन पर बैठते है तो आगे या पीछे भुककर ऐसा करते हैं। खडे होने या चलने मे भी वे वैसा ही करते हैं। यह आदत मेरुदड को विकृत करती है। शरीर की स्वस्थ सामान्य स्थिति है गदन से लेकर पीठ के निचले हिस्से तक मेरुदड को सीधा रखना।

आसनो की सख्या चौरासी से लेकर कई सौ तक है। विभिन्न योगाभ्यासियो ने तरह-तरह के आसन बनाए हैं। जिन्हें घर-द्वार त्यागकर सिर्फ योग मे ही सारा समय बिताना है, वे चाहें तो इन सबका अभ्यास करते रहे। सामान्य गृहस्थ के लिए जो आसन उपयोगी हैं उनकी सख्या अधिक-से अधिक ३०-३५ ही हो सकती है। हम लगभग इतने ही आसन यहा आप को बतलाने जा रहे हैं। आपके पास जितना समय हो और आपका शरीर जो आसन कर सके। उसीके मुताबिक आप अपने लिए आसनो और उन की सख्या का चुनाव कर लें।

हर आसन के साथ ही उनसे होने वाले लाभ भी दिए हुए हैं।

किन बीमारियो के लिए कौन-से आसन उपयुक्त हैं यह एक अलग अध्याय मे वर्णित है। इसके लिए आप उक्त अध्याय का देखें।

आसन करते हुए आप एक बात का ध्यान अवश्य रखें कि अपने आप को अधिक नहीं थका डालें। इसलिए आसन समाप्त करने के बाद शवासन मे कम-से-कम पाच मिनट अवश्य रहें। जिस-जिस आसन के बाद आप को थकावट महसूस हो उस-उसके बाद कुछ सेकडों तक शवासन अवश्य करें।

यदि श्राप प्राणायाम भी करना चाहते हो तो आसनो के अन्त मे यह करें। प्राणायाम के बाद भी शवासन करके ही उठें।

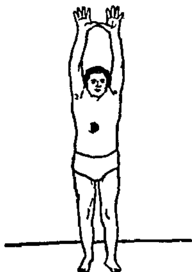
आप चाहें तो आसनों के बाद ध्यान कर सकते हैं।

मगर आपकी रुचि सिर्फ ध्यानयोग मे हो तो आपको सिफ सुखासन, सिद्धासन अथवा पद्मासन ही जानना काफी है।

ताडासन

ताड का अर्थ होता है पहाड।

पैरो को मिलाइए। अगूठो और एडियो को एक साथ सटाकर सीधे खडे होइए। दोनो हाथो को सर के ठीक ऊपर ले जाइए। आखो को ऊपर की ओर जमाइए। हाथो को ऊपर ले जाते हुए धीरे-धीरे एडी के बल ऊपर उठने की कोशिश कीजिए। जब पूरी तरह पजो पर खडे हो चुकें तो इसी तरह कम-से-कम सात सेकड रहें। फिर धीरे-धीरे पूर्वस्थिति मे आ जाए।



ताडासन

(सात सेकड का अन्दाजा आप मन-ही-मन, धीरे-धीरे एक से सात तक अथवा उससे तेजी से एक से चौदह तक गिनकर कर सकते हैं। अपने गिनने की रफ्तार के अनुसार घडी से आप समय का हिसाब लगा लें।)

ऊपर उठते हुए सास अदर खीचिए, नीचे आते हुए सास छोडिए।

लाभ—मेरुदड सीधा करने की आदत पडाना इसका सबसे बडा लाभ है। आमतौर हम आगे या पीछे झुककर खडे होते हैं, इसी तरह चलते फिरते भी हैं। जबकि खडे होने अथवा चलने मे मेरुदड को पूरी तरह सीधा और तना हुआ होना चाहिए। ताडासन से पेट की पेशिया मजबूत होती हैं जाघो नितम्बो और पिंडलियों की पशिया तनने से वे सशक्त होनी हैं। आतें प्रसारित होने के कारण पाचनशक्ति बढती है।

हस्तपादासन

ताडासन में खड़े होइए।

सर के ऊपर ले जाए गए दोनों हाथों को, एक-दूसरे से सटाए हुए, धीरे-धीरे, सामने की ओर जहा तक झुक सकें, झुकिए। कोशिश कीजिए कि इस तरह, घुटनों को सीधा रखे हुए, हाथों की उगलियों से पाव के अगूठे छू सकें। लेकिन अगर इतना नहीं भी कर सकें तो कोई हर्ज नहीं। जितना झुक सकें वहीं तक जाकर सात सेकड रुक जाइए। फिर पहले की स्थिति में आ जाइए। हाथों को ऊपर ले जाने की आवश्यकता नहीं। उन्हें दोनों बगल में लटक जाने दीजिए। आगे झुकते हुए सांस छोड़ते जाइए। झुकी अवस्था में सास रोके रहिए। पूर्वस्थिति में आते हुए सास लेते जाइए। इसे दोनों पैरों को एक दूसरे से लगभग दो-तीन फीट फैलाकर भी कर सकते हैं।

लाभ—पीठ, पेट, नितम्बों, जाघों, पिंडलियों तथा छाती की पेशिया मजबूत होंगी। मेरुदड लचीला होगा। पीठ और कमर का दद दूर होगा।

पश्चादासन

दोनों पैरों को एक दूसरे से सटाकर (या एक दूसरे से २-३ फीट की दूरी पर फैलाकर) सीधे खड़े होइए। दोनों हाथ अगल-बगल कमर पर रखिए—दाहिना दाहिनी ओर, बायां बायीं ओर।

अब इसी तरह खड़े-खड़े सर को पीछे की ओर ले जाते हुए पूरी धड़ को पीछे की ओर झुकाइए। जहां तक जा सकें वहा तक जाकर सात सेकड स्थिर रहिए। फिर पहली स्थिति में आ जाइए।

लाभ—वही जो हस्तपादासन में हैं।

त्रिकोणासन

दोनों पांवों को दो-तीन फीट की दूरी पर फैलाकर खड़े होइए। कधों के पास से दोनों हाथों को दोनों ओर सीधी रेखा में फैलाइए। अब दाहिने हाथ को नीचे की ओर ले जाकर दाहिने पांव का अगूठा छूने की कोशिश कीजिए। बायां हाथ कधे की ही सीध में रहकर ऊपर की ओर उठता जाएगा। धड़ कमर के पास दाहिनी ओर को झुकेगी। जहां तक हाथ जा सके वहां तक ले जाकर उसी स्थिति में सात सेकड रहिए। फिर पहले की स्थिति में आ जाइए। दोनों हाथों को बगल में गिर जाने दीजिए।

नीचे झुकते हुए सांस छोड़िए, ऊपर उठते हुए खींचिए।

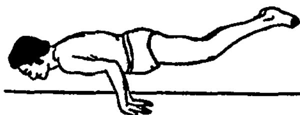
इसी तरह बायीं ओर भी कीजिए।

सामने की ओर झुककर बाएं हाथ से दाहिना पांव और दाहिने से बामां पांव छूने की कोशिश करना इसका एक और रूप है।

लाभ—टांगों, जांघों और नितम्बों की मांसपेशियों को ताकत मिलती है और उनका सतुलित विकास होता है। पीठ और गर्दन के दर्द दूर होते हैं और सीना बढ़ता है।

मयूरासन

मयूर का अर्थ है मोर। उकड़ू बैठ जाइए। दोनों हथेलियों को घुटनों के बीच जमीन पर जमाइए। उगलियां पीछे पैरों की ओर रखिए। हाथों को कुहनियों के पास से मोड़कर पेट से सटाइए। आहिस्ता-आहिस्ता सामने की ओर झुकिए। अब शरीर का भार कलाइयों पर रखे-रखे दोनों पांवों को जमीन से ऊंचा उठाइए। पैर पूरी तरह सीधे रहें इसका ध्यान रखिए।



मयूरासन

अगर आप सर से पांव तक सीधे होकर जमीन के समानान्तर रहते हैं तो यह हंसासन की स्थिति हुई। मयूरासन की यह पहली अवस्था है। दोनों पांवों को जहां तक ले जा सकें ऊपर ले आइए। यह मयूरासन हो गया।

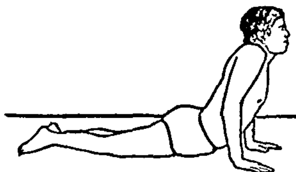
सात सेकंड तक इसी तरह रहकर वापस पूर्वस्थिति में चले आइए।

लाभ—पेट की पेशियों और नाड़ियों को बल मिलता है। पाचन-क्रिया बढ़ती है। सारे शरीर की लगभग सभी पेशियों का प्रसारण-सकुचन होने से सभी अग लाभान्वित होते हैं। विशेषकर कुहनियों और हथेलियों को शक्ति मिलती है।

भुजगासन

भुजग का अर्थ है सांप। आप इसे सर्पासन भी कह सकते हैं।

पेट के बल (पट) लेट जाइए। दोनों हाथों की हथेलियों को नाभि के पास जमीन पर जमाकर धड़ को ऊपर की ओर उठाइए। सर और छाती



भुजंगासन

का ऊपर की ओर पूरी तरह उठाइए। नाभि से लेकर पैर का सम्पूर्ण भाग जमीन से सटा हुआ होना चाहिए।

लाभ—इस आसन से पेट छाती और बाहों की पेशियों पर तनाव पड़ता है और पीठ तथा कमर की पेशियों का सकोचन होता है। इससे ये सारे अंग पुष्ट होते हैं। मेरुदंड की चक्रियों के दोष दूर होते हैं। कमर और पीठ का दर्द जाता रहता है। भूख खुलकर लगती है और पाचनशक्ति बढ़ती है। सीना चौड़ा होता है। जिगर और गुर्दे सक्रिय और पुष्ट होते हैं।

स्त्रियों के प्रजननांगों के विकार और मासिकधर्म की गड़बड़ी दूर करने तथा डिम्बाशय और गर्भाशय को सक्रिय तथा पुष्ट करने में इससे काफी सहायता मिलती है।

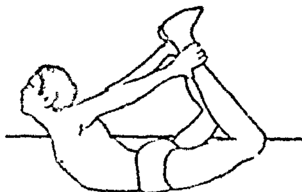
इससे पेट की चर्बी घटती है। सुषुम्ना स्थित यौनकेन्द्रों को सक्रियता मिलने से पुरुष और स्त्री दोनों की यौनक्रिया बेहतर होती है।

धनुरासन

धनु का अर्थ होता है धनुष। इस आसन में शरीर की स्थिति धनुष के आकार की हो जाती है।

जमीन पर, नीचे की ओर मुँह किए हुए पेट के बल (पट) लेट

[illegible]



धनुरासन

अर्द्धशलभासन और शलभासन

शलभ फतिंगे को कहते हैं।

जमीन पर सीधे पेट के बल (पट) लेट जाइए। दोनों हाथ अगल बगल सटाकर रखिए। ठुड्डी को जमीन पर छुआकर रखिए। मुट्ठी बन्द रखिए। लम्बी सांस लेते हुए बायां पांव ऊपर की ओर जहां तक उठ सके



शलभासन

उठाइए। सांस रोकिए और इस स्थिति में सात सेकंड रहिए। फिर सांस छोड़ते हुए धीरे धीरे उठे हुए पैर को जमीन पर पहले की स्थिति में ले आइए।

इसी तरह दाहिना पांव भी उठाइए।

यह अर्द्धशलभासन हुआ।

शलभासन में दोनों पांव एक साथ ऊपर की ओर उठाए जाते हैं।

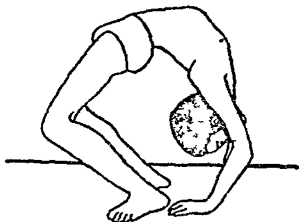
लाभ—पुरुष यौनग्रन्थियां तथा स्त्रियों के श्रोणिस्थित अवयव (डिम्बग्रंथि, गर्भाशय आदि) सक्रिय और पुष्ट होते हैं। घुटनों, नितम्बों कमर और पेट की चर्बी घटती है और इन अंगों को शक्ति मिलती है। बवासीर और कब्ज दूर होते हैं। मेरुदण्ड लचकदार और सशक्त होता है। सुषुम्ना पुष्ट होती है, उससे निकलने वाली नाड़ियों की सक्रियता बढ़ती है। बड़ी आंतों में रक्तसंचार में वृद्धि होने के कारण उदरवायु से मुक्ति मिलती है। मेरुदंड की चक्रियों का विचलन दूर होता है। दांत, गला और कलाइयां सशक्त होती हैं।

स्त्रियों के लिए यह आसन विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

पश्चासन

घुटनों को मोड़कर, इस तरह कि एड़ियां नितम्ब को छूती रहें, पीठ

के बल (चित) लेट जाइए। दोनो पैरो को एक फुट की दूरी पर र
कनपटियो के बगल को छूते हुए हथेलियो का ज़मीन पर इस तरह र
कि उगलियो के श्रगले हिस्से कधा की तरह रहें। श्रब धीरे धीरे धड
ऊपर उठाइए। सर भी धीरे धीरे सरकता जाएगा। इस तरह करते



चक्रासन

ऐसी स्थिति मे श्राइए कि शरीर के ऊपरी भाग का भार सर के ऊप
हिस्से पर पडे। श्रब हाथो श्रौर पैरो को सीधा करते हुए सिर श्रौर शरी
को पूरी गोलाई मे ऊपर उठाइए। शरीर को श्रौर भी ऊपर खींचक
घुटनो को सीधे करने की कोशिश कीजिए।

सात सेकड इसी तरह रहिए।

फिर धीरे धीरे पूर्वस्थिति मे वापस श्रा जाइए।

लाभ—चूकि इस श्रासन मे शरीर के सभी सस्थानो पेशियो श्रौ
नाडियो का प्रसारण श्रौर सकोचन होता है इसलिए इन सभी पर इसक
लाभकारी प्रभाव होता है। सारी ग्रथियो पर भी दवाव पडने के कारण
पुष्ट श्रौर सक्रिय होती हैं। स्त्री श्रौर पुरुष दोनो यौन-ग्रथियो के प्रभा
वित होने के कारण रमणशक्ति में वृद्धि होती है।

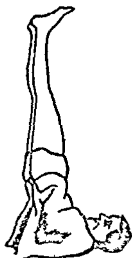
मेरुदड पर तनाव पडने के कारण यह बुढापे तक भी लचीला श्रौ
युवा बना रहता है। श्राख की दृष्टि श्रौर स्वर सुधरते हैं। त्वचा का र
खिलता है। कब्ज, उदरवायु, दमा, श्रपच मे लाभ होता है। मस्तिष्क

रक्तप्रवाह अधिक होता है जिससे मन में चुस्ती आती है। बुद्धि तीव्र होती है।

सावधानी—उच्च रक्तचाप हृदय रोग, पेप्टिक अल्सर (पेट के घाव), हर्निया और आंत के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

सर्वांगासन

पीठ के बल चित लेट जाइए दोनों पैरों को पूरी तरह सामने की ओर जमीन पर फैला दीजिए। हाथों का सहारा देकर दोनों पैरों को धीरे धीरे ऊपर उठाइए। हल्का-सा झटका देकर गर्दन को भी ऊपर उठाइए और हाथों पर रोके हुए पूरे पांवों और शरीर का भार कन्धों पर पड़ जाने दीजिए। कुहनियों को जमीन पर पड़े रहने दीजिए और दोनों हाथों को कमर के पास लाकर उनसे शरीर को ऊपर की ओर उठे रहने में मदद लीजिए। अंगूठों और उंगलियों की नोकों से लेकर कंधों तक सारा शरीर एक सीधी रेखा में जमीन के साथ समकोण बनाते हुए रहना चाहिए। ठुड्डियां छाती से सटी होंगी। पांव और उंगलियां को जहां तक जा सकें ऊपर की ओर तानने की कोशिश कीजिए। घुटने मुड़ने मत दीजिए। आंखें पांव की उंगलियों पर जमाइए। सामान्य रूप में सांस लेते रहिए।



सर्वांगासन

सात सेकंड से आरम्भ कर अधिक-से-अधिक तीन मिनट तक इस आसन में रहने का अभ्यास कीजिए।

मोटे आदमियों के लिए इसे करना कठिन हो सकता है। पर इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं। वे जितनी दूर तक इसमें सफल हो सकें उतने से ही उन्हें लाभ होगा।

लाभ—दूसरे इन्द्रियों (५ संवेदन इन्द्रियों और ५ कर्मेन्द्रियों) की सक्रियता बढ़ाने में इस आसन को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। गर्दन की नाड़ियों और स्वरयन्त्र पर दबाव पड़ने के कारण वे संतुलित और पुष्ट होते हैं। कहा जाता है कि इससे गवैयों की आवाज बेहतर होती है। रक्त संचार पाचन जननेन्द्रिय स्नायु एवं ग्रन्थि संस्थानों को सक्रिय बनाकर उनमें संतुलन लाता है। मस्तिष्क में गुरुत्वाकर्षण के कारण अधिक रक्त

प्रवाह होने के कारण उसे आक्सीजन अधिक मात्रा मे मिलता है। इससे मस्तिष्क पुष्ट एव स्वस्थ होता है, जिससे दीर्घायु होती है और वृद्धावस्था रुकती है। पैर, उदर प्रदेश, जननाग, मेरुदड और गर्दन मजबूत होते हैं। बवासीर और मधुमेह मे लाभ होता है।

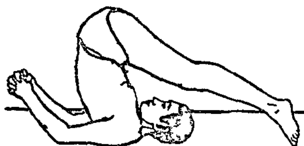
इस आसन मे वे सारे लाभ होते है जो शीर्षासन मे होते हैं। योगी इसे 'कुण्डलिनी' जाग्रत करने का सर्वश्रेष्ठ आसन मानते हैं।

सावधानी—उच्च रक्तचाप तथा हृदयरोग के रोगियो के लिए इसे वर्जित माना जाता है।

हलासन

सर्वांगासन कीजिए।

अब धीरे-धीरे पावो को सामने सिर की ओर ले जाते हुए उनसे जमीन छूने की कोशिश कीजिए। दोनो पाव सीधे रहे। घुटनो के पास उन्हे मुडने



हलासन

न दे। अब दोनो हाथो को सर के विपरीत दिशा मे पूरी तरह जमीन पर फैल जाने दे।

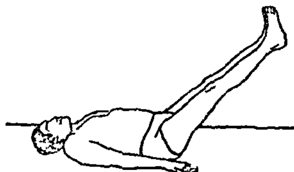
सात सेकंड रहकर वापस सर्वांगासन मे आ जाइए।

लाभ—इससे पूरे शरीर के पिछले हिस्से की सारी पेशिया तन जाती हैं जिससे उनका पूरा व्यायाम हो जाता है और वे सबल होती है। सुषुम्ना और हाथ पावो मे खिचाव पडने के कारण उनका रक्त सचार बढ जाता है और वे पुष्ट होते हैं। सुषुम्ना मे आने और उससे निकलने वाली सारी नाडिया पुष्ट और सक्रिय होती हैं। छाती और उदर मे स्थित सारे अवयव पुष्ट होते हैं। मस्तिष्क मे अधिक रक्त सचार होता है। चुल्लिका (थाय-

रॉयड) पर दबाव पड़ने से वह स्वस्थ होता है। श्रोणिप्रदेश स्थित अवयवों और यौन-ग्रन्थियों को सक्रियता और पुष्टि मिलती है मेरुदंड लचीला होता है। चर्बी दूर होती है।

उत्तानपादासन

जमीन पर पीठ के बल (चित) लेट जाइए। हथेलियों से जमीन छूते हुए दोनों हाथों को अगल-बगल पूरी तरह फैला दीजिए। दोनों पैरों को पूरी तरह सीधा तानिए। धीरे धीरे दोनों पैरों को जमीन से दस-बारह



उत्तानपादासन

इंच उठाइए। इतना ले जाकर सात सेकंड इसी तरह रहने दीजिए। फिर पूर्वस्थिति में वापस आ जाइए।

लाभ—यह आसन उदर की सारी भीतरी और बाहरी पेशियों को व्यायाम देता है जिससे पेट की कब्ज की खराबियां दूर होती हैं कब्ज जाता रहता है उदरवायु अपच और आंत की बीमारियां ठीक होती हैं।

कमर और पीठ के दर्द दूर होते हैं। नितम्ब और जानुसंधि मजबूत होते हैं। सुषुम्ना में शक्ति आती है। प्रजनन ग्रंथियों की सक्रियता बढ़ने से रमणशक्ति में वृद्धि होती है।

पवनमुक्तासन

पवन का अर्थ होता है हवा। इस आसन से शरीर की वायु और वात निकालने में सहायता मिलती है। आर्थराइटिस (गठिया) के लिए इस आसन का विशेष महत्त्व माना जाता है।

जमीन पर पीठ के बल (चित) लेट जाइए। दोनों हाथों को सामने की

और अगल-बगल रहने दीजिए।

अब एक पाव को दोनो हाथा से घुटने के नीचे पकडिए और उसे मोड-कर जाघ को पूरी तरह पेट पर दबाइए। इस तरह सात सेकड रहिए। बारी-बारी से दाहिने और बाएँ पाव से ऐसा कीजिए।

फिर इसी तरह दोनो पावो को छाती की ओर पेट पर पूरी तरह दबाइए।

हर आसन म सात सेकड रहकर पूर्वस्थिति मे आ जाइए। आसन करते हुए सास छोडिए, सात सेकड उसे बाहर ही रोके रहिए। पाव हटाने के साथ-साथ सास लेते जाइए।

इस आसन को खडे-खडे भी किया जा सकता है '

लाभ—इससे अग्न्याशय (पन्क्रियाज) की गतिशीलता बढती है। उदर व अन्य अवयवो को लाभ होता है। उदरवायु से मुक्ति मिलती है। गैस की तकलीफ दूर होती है। आतें मजबूत होती हैं। कब्ज दूर होता है। जोडा से वायु और वात निकलती है। पैरा क गठिया को दूर करता है।

यह हानिरहित आसन है जिसे हर कोई कर सकता है।

पद्मासन

पैरा का सामने फैलाकर जमीन पर बैठ जाइए। दाहिने पैर का मोड कर उसके पजे को बायी जाघ पर इस तरह रखिए कि एडी कूल्हे की हडडी



पद्मासन

का स्पश करे। अब बाया पाव मोडकर उसे दाहिनी जाघ पर रखिए।

दोनो हाथो को सामने फैलाकर हथेलिया घुटनो पर रखिए।

इस आसन का अभ्यास करने मे शुरू-शुरू मे थोडी कठिनाई हो सकती है। वैसी हालत मे पहले सुखासन का अभ्यास किया जा सकता है। इसकी विधि यह है कि एक पाव को घुटने के पास नीचे रखिए और दूसरे को जाघ के ऊपर जाने दीजिए। यह सुखासन हुआ।

फिर धीरे धीरे दोना पावो को जाघा पर ले जा पाइएगा तो वह पद्मासन (कमल आसन) हो जाएगा।

लाभ—प्राणायाम करने तथा ध्यान लगाने के लिए सुखासन और पदमासन सवश्रेष्ठ आसन हैं। सम्पूण नाडितत्र इससे सक्रिय और पुष्ट होता है। मन का शान्ति मिलती है। थकावट दूर हाती है। सारी पशिया ढीली होती हैं।

मत्स्यासन

मत्स्य का अथ है मछली।

पदमासन मे बैठ जाइए। फिर धीरे-धीरे पीछे की ओर झुकते झुकते सर और पीठ को जमीन पर डाल दीजिए। यदि आप चाहे तो कमर से



मत्स्यासन

ऊपर पीठ तिर्छी करके छाती का ऊपर की ओर उठा सकते है। इस तरह सर तो जमीन पर पडा हागा और पीठ ऊची उठी हुई।

शरीर का ढीला छोडकर धीरे धीरे सास लेते रहिए।

इस आसन मे आधा से तीन मिनट रह सकते हैं।

लाभ—इस आसन से कब्ज दूर हाता है और यौनेन्द्रिय सहित सुषुम्ना का पूरा हिस्सा बल प्राप्त करता है।

औरता के लिए यह विशेष लाभप्रद माना जाता है क्योकि गर्भसस्थान का स्वस्थ और सशक्त करता है।

इससे फेफडो और छाती की पशिया मजबूत हाती हैं। कहते हैं कि नियमित रूप स इस आसन का करने वाले का मेरुदड अत तक सीधा

रहता है और व्यक्ति वृद्धावस्था मे भी झुकता नही।

इस आसन को करते हुए तनाव का अल्पतम रखने की चेष्टा कीजिए।

लोलासन

पद्मासन मे बैठ जाइए। हथेलियो को जाघो की बगल मे जमीन पर जमाइए। हाथो पर वजन देते हुए पूरे शरीर का ऊपर उठाइए।

इस तरह सात सेकड रहिए।

फिर जमीन पर वापस आ जाइए।

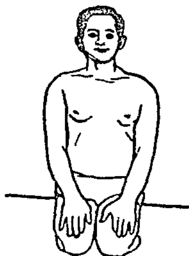
देह को ऊपर उठाते हुए सास लीजिए और लोलासन मे सात सेकड रहते हुए सास रोके रखिए। फिर जमीन पर वापस जाते हुए सास लीजिए।

इस आसन मे आगे-पीछे झूला भी जा सकता है।

लाभ—कलाइया, हाथ, कधे और सीना पुष्ट होते है। टागो की मासपेशिया लचीली होती हैं और बाहो की छोटी पेशिया विकसित होती हैं। कब्ज उदरवायु और अनजाने वीय निकल जाने की शिकायतें दूर होती हैं। अधिक उबासी आना हिचकी आना और आलस्य के लिए भी यह लाभकारी माना जाता है।

वज्रासन

जमीन पर घुटने टेककर बैठ जाइए, इस तरह कि आपके नितम्ब एडियो के ऊपर पूरी तरह जम जाए। दोनो हाथ घुटनो पर रख लीजिए आखें खुली रखिए। सास लम्बी गहरी और धीरे धीरे चलने दीजिए। छाती फली हुई और पेट पिचका हुआ रखिए।



वज्रासन

लाभ—इसका सबसे बडा लाभ यह है कि पुराने हृदयरोगी भी इसका अभ्यास कर सकते हैं। दूसरा लाभ यह है कि खाने के तुरत बाद भी इसे किया जा सकता है खाना चाहे जितना भारी क्यो न हुआ हो।

मेरदड सशक्त और सीधा होता है। स्त्री और पुरुष दोनो यौनागो को शक्ति प्राप्त होती है। इसका लाभ सरदद, आलस्य, शरीर के कडापन क्रोध, चिन्ता, भय यौनागो की दुबलता, यौनग्रन्थियो की अल्पकायशीलता और किडनी के काम म सुस्ती मे भी माना जाता है। पाचनशक्ति म वद्धि होती है। बुढापा रुकता है युवावस्था लम्बे समय तक कायम रहती है। हृदयरोगियो के लिए अत्यन्त गुणकारी माना जाता है।

विस्तृतपाद वज्रासन

यह सामान्य वज्रासन से इतना अलग होता है कि बैठकर दोनो पावो को नितम्बो से अलग फैला दिया जाता है जबकि दोनो घुटने परस्पर सटे होते हैं। दोनो हाथ घुटनो पर रखिए। सीधा लेकिन विश्राम की स्थिति म बैठिए। आखें सामने की ओर हो। सास लम्बी, गहरी और धीरे धीरे चल रही हो।

लाभ—योगी कामेच्छा नियन्त्रण के लिए इसका उपयोग करते हैं। लेकिन गृहस्थी के लिए भी यह उपयोगी है क्योकि यौनागो और यौन-ग्रन्थियो को बल प्रदान कर उन्हें सक्रिय बनाता है।

भोजन के तुरन्त बाद यह आसन भी किया जा सकता है।

नत वज्रासन

वज्रासन मे बैठ जाइए। हाथो को घुटने पर रखने की बजाय उन्हे पीठ के पीछे ले जाकर आपस मे उगलिया फसा लीजिए। अब धीरे धीरे आगे की ओर इस तरह झुकिए कि आपका पेट और छाती जाघो को छूने लगे और ठुडडी और नाक जमीन को। सात सेकन्ड तक इसी तरह रहिए। आख खुली रखिए। सास धीरे धीरे चलने दीजिए।

लाभ—वज्रासन के सारे लाभ उससे अधिक मात्रा मे होते हैं। मेरुदड का लचीलापन और यौनागों यौनकेन्द्रो और यौनग्रन्थियो की सक्रियता बढती है।

सावधानी—यह भरे पेट म नहीं करना चाहिए। अन्य आसनो की तरह इसे खाली पेट मे ही करना चाहिए।

सुप्त वज्रासन

वज्रासन म बैठ जाइए। पावो को थोडा नितम्बो स अलग करके धीरे धीरे पीछे की ओर झुकते जाइए इस तरह कि आप पूरी तरह स जमीन पर पड जाए। इस तरह आपकी पीठ, कधे और सर जमीन को छू

लेंगे। दोनों हाथ जांघों पर रखिए। आंखें बंद या खुली रखें। गहरी सांस लेते रहिए। तनावरहित रहने की चेष्टा कीजिए।



सुप्त वज्रासन

लाभ—सुप्त वज्रासन में पांवों, घुटनों, पेट, पसलियों, गले और गर्दन, मुंह, आंखें और सर की रक्तवाहिनियों को व्यायाम मिलने के कारण ये सभी सबल बनते हैं। कमर और पीठ का दर्द दूर होता है। शांति मिलती है। सुषुम्ना और यौनेन्द्रियां मजबूत होती हैं।

सावधानी—गर्भवती स्त्रियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

गोमुखासन

गोमुख का अर्थ है गाय का मुंह। बाएं पैर की एड़ी को नितम्ब के नीचे रखिए। दाहिने पैर को बाईं जांघ के ऊपर रखिए। घुटने एक दूसरे के ऊपर रहने दीजिए। बाएं हाथ को पीठ के पीछे ले जाइए। दाहिने हाथ को दाहिने कंधे पर से पीछे ले जाइए। दोनों हाथों की उंगलियां फंसा लीजिए। धड़ सीधी रखिए।

फिर ठीक इसका उल्टा दाएं पैर को नितम्ब के नीचे और बाएं को दाहिनी जांघ पर रखकर यह आसन कीजिए।

आंखें बंद या खुली रख सकते हैं। सांस गहरी और धीमी रखिए।

लाभ—शरीर के बगल के हिस्सों में रक्तसंचार अधिक होता है। पांव, घुटने और कमर की पेशियां एवम् नाड़ियां मजबूत होती हैं। घुटने और पिंडलियां सबल होती हैं। दोनों फेफड़ों की सक्रियता बढ़ती है। दमा और यक्ष्मा के रोगियों के लिए यह गुणकारी माना जाता है। अम्लपित्त का नाश होता है। भूख बढ़ती है। पीठ और कमर का दर्द दूर होता है। पौरुष ग्रंथि स्त्री और पुरुष यौनांग तथा गुदाभाग की पेशियां बल प्राप्त करती हैं। यह बवासीर रोकता है। कब्ज दूर करता है। शीघ्रपतन में लाभ पहुंचाता है। स्तम्भन शक्ति में वृद्धि होती है।

भद्रासन

इसे गोरक्ष अथवा गोरख आसन भी कहते हैं। यह नाम योगीश्रेष्ठ गुरु गोरखनाथ के ऊपर पड़ा है।

जमीन पर इस तरह बैठिए कि आपका दाहिना घुटना पूरी तरह दाहिनी ओर को और बाया घुटना पूरी तरह बायीं ओर को हो जाय। ऐसा करने के लिए आपको अपने पाव ऐसे मोडने होंगे कि आपकी पिंडलिया आपकी जाघो के तला को छूती रहेंगी। अपने पैरो के तलवे सटा लीजिए। दोनो हाथो से घुटनो को इस तरह दबाइए कि वे जहा तक सभव हो जमीन को छूते रहे। हो सके तो एडियो को गुदासधि से छूते हुए रखने की चेष्टा कीजिए।

आखे सीधी रखिए, सास गहरी लीजिए।

लाभ—यह आसन गुदासधि (मूलाधार) और प्रजननागो (स्त्री और पुरुष दोनो के) की नाडिया, पेशियो और रक्तसचार को बल प्रदान करता है। *योगी यह मानते है कि इससे वीर्य गाढा होता है और कामेच्छा का* दमन करने मे सहायता मिलती है। परन्तु, चूकि इसका अधिकाश प्रभाव यौनागो पर पडता है इसलिए यह रमणशक्ति वृद्धि के लिए सर्वोत्तम आसन माना जाता है। वृद्धावस्था के कारण आने वाली शारीरिक अकडन इससे दूर होती है। जोडो मे लचीलापन आता है, पावो की सूजन दूर होती है। शीघ्रपतन स्वप्नदोष और उत्थान शिथिलता नष्ट होती है। हर्निया (आत उतरना) रुकता है। स्त्री यौनागो विशेषकर गर्भाशय के पशीय और रक्तसचार सस्थान सक्रिय और सुदृढ होते हैं।

इसका नियमित अभ्यास स्त्री और पुरुष दोनो के लिए अत्यत गुणकारी माना जाता है।

विस्तृत पादासन

जमीन पर इस तरह बैठिए कि आपका दाहिना पाव पूरी तरह दाहिनी तरफ और बाया पाव पूरी तरह बाइ तरफ फैला रहे। यथासभव दोनो को एक सीधी रेखा मे ले आने की चेष्टा करें।

आखें खुली रखें शरीर सीधा रखें। शरीर को पशिया को जहा तक सभव हो ढीली रखने की कोशिश कीजिए। सास गहरी और धीरे धीरे चलने दीजिए।

लाभ—सम्पूर्ण श्रोणिक्षेत्र (पल्विस) में रक्तसचार और स्नायु पशीय सस्थानो को (जिसमे मल त्याग और प्रजनन के अग भी सम्मिलित है) इस

आसन से बल मिलता है। इससे पिंडलियों, जांघों और पैरों के जोड़ों को शक्ति प्राप्त होती है। पांवों की अकड़न दूर होती है। अगर बराबर इसे किया जाय तो कहते हैं कि इससे कद की ऊंचाई भी बढ़ सकती है। यौनेन्द्रियों के सशक्त होने के कारण रमणक्षमता बढ़ती है।

संयोग से जो आसन रमणक्षमता बढ़ाने के लिए काम आते हैं वही कामेच्छा दमन के लिए भी काम आते हैं। योग और भोग के मार्ग लगता है एक ही हैं। अपनी इच्छा के अनुसार जो जिस पर चले।

जानुशिरासन

जमीन पर इस तरह बैठिए कि आपका बायां पैर पूरी तरह लम्बाई में तना रहे और दाहिना पैर बाईं जांघ पर गुदासंधि के पास मुड़कर लग जाय। अब बायें पैर के अंगूठे को अपने दोनों हाथों से पकड़िए। ऐसा करते हुए आपको पेट को सामने की ओर इस तरह झुकाना पड़ेगा कि आपका माथा बायें बाएं घुटने को छू ले। दाहिने घुटने को भी जमीन पर लगा रहने दीजिए।

आंखें इच्छानुसार खुली या बंद रखिए। सांस गहरी और धीमी चलने दीजिए।

इसी तरह दोनों पांव बदलकर कीजिए।

पेट निकले होने अथवा पीठ की अकड़न की हालत में यह आसन आसानी से पूरी तरह करना मुश्किल होगा। फिर भी जहां तक सम्भव हो झुकने की कोशिश करनी चाहिए।

लाभ—इससे मूलाधार और यौनग्रंथियों के नाड़ी पशीय तंत्रों का रक्तसंचार बढ़ता है और उन्हें बल मिलता है। जिगर (लीवर) सक्रिय होता है। पसलियां मजबूत होती हैं। मूत्राशय और वीर्याशय सशक्त होते हैं। किडनी की पथरी दूर होने में सहायता मिलती है। स्त्रियों के गर्भाशय तथा डिम्ब प्रणाली की पेशियां मजबूत होती हैं। डिम्बाशय सक्रिय होता है।

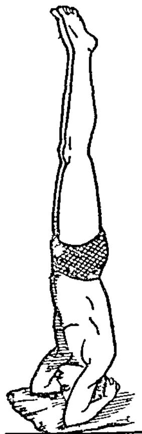
स्त्री और पुरुष यदि इस आसन को नियमित रूप से करें तो उनकी यौनक्रिया अधिक सुखद होगी, ऐसा कहा जाता है।

शीर्षासन

यह आसन करते हुए अगर आरंभ में किसी दीवार के पास की जगह चुन लें तो अच्छा, ताकि अगर गिरें तो आपको दीवार का सहारा मिल जाए।

जमीन पर कम्बल अथवा कोई मोटी चादर अथवा फोमरबर या तौलिया जैसी चीज इच्छानुसार तह कर, बिछा लीजिए।

वज्रासन मे बैठ जाइए। सामने की ओर झुक कर दोनो कुहनियो को, एक दूसरे से थोडी दूरी पर टिका दीजिए। दोनो हाथो की उगलिया को आपस मे फसाकर सर के नीचे रखिए। सर को दोनो हाथो के बीच रखिए।



शीर्षासन

अब घुटनो को जमीन से ऊचा उठाइए। ऊपर की ओर उठने के लिए शरीर को झटका दें ताकि दोनो पाव जमीन छोडकर ऊपर की ओर जाए। टागो को तानकर छत की ओर सीधा कीजिए। इस तरह आपके पाव ऊपर रहगे और आपका शरीर जमीन पर हाथो के सहारे टिका रहेगा।

शुरू-शुरू मे किसी अन्य आदमी की सहायता लें तो सुविधा होगी।

शीर्षासन की स्थिति मे आरभ मे ३० सेकड से शुरू करके ६-७ मिनट रहने का अभ्यास कीजिए।

सास नियमित रूप मे नाक से चले ऐसा प्रयास कीजिए।

लाभ—इस आसन से सबसे अधिक लाभ मस्तिष्क का होता है क्योकि गुरुत्वाकर्षण के कारण इसमे रक्त का सचार अधिक होता है। अधिक रक्तसचार यानी अधिक आक्सीजन का मिलना जो मस्तिष्क के स्वास्थ्य और यौवन के लिए अनिवार्य है। शीर्षासन हमेशा जवान बने रहने और बुढापा रोकने के लिए सर्वोत्तम आसन माना जाता है।

इससे सुषुम्ना के ऊपरी हिस्सों मे भी अधिक रक्त मिलने से वे स्वस्थ होते हैं, आखो की ज्योति बढ़ती है, श्रवण और घ्राण शक्ति तीव्र होती है।

चुल्लिका ग्रंथि (थायरॉयड) सक्रिय होती है। स्वरयन्त्र बेहतर होता है, नींद अच्छी आती है। ध्यान मे एकाग्रता प्राप्त होती है। मन का तनाव दूर होकर शान्ति मिलती है। विषाद दूर करने मे इससे सहायता मिलती है और अनेक मानसिक रोगो मे इससे लाभ होता है।

छाती की चर्बी दूर होती है। प्रजननांग मेरुदंड और गर्दन को शक्ति मिलती है। प्रदर, मधुमेह और हाइड्रोसील की बीमारिया दूर होती हैं।

विशेष ज्ञातव्य—शीर्षासन करने के बाद फौरन शवासन मे लेटकर कम-से-कम उतनी ही देर रहना चाहिए जितनी देर शीर्षासन किया गया हो।

सावधानी—जिन्हे उच्च रक्तचाप या नाक से खून बहने की शिकायत हो उन्हे यह आसन नही करना चाहिए। हृदय के रोगियो को भी नही करना चाहिए।

लेकिन जिनको साधारण उच्च रक्तचाप हो वे इसे कर सकते हैं और इससे उन्हे लाभ भी हो सकता है।

बढा हुआ दमा, यक्ष्मा कैंसर, आख, नाक, कान की जीर्ण बीमारिया सरदर्द और मोटापा जैसी शिकायतो के मरीजो को भी यह आसन नही करना चाहिए।

पश्चिमोत्तानासन

दोनो पावो को एक-दूसरे से सटाकर सामने की ओर पूरे विस्तार मे फैला दीजिए। दोनो हथेलिया जाघो पर रख लीजिए। धड को आगे की



पश्चिमोत्तानासन

ओर झुकाकर हाथों से अगूठो (अथवा टखनो) को पकडिए। अब घुटना को जहां तक सभव हो बगैर, या कम से कम, मोडे हुए शरीर को आगे की

और झुकाते जाइए। माथे को घुटनों पर सटाने की कोशिश कीजिए।

अभ्यास के आरंभ में शरीर पर जरूरत से ज्यादा जोर दिए बगैर जहां तक झुक सकें उतना ही झुकें।

अभ्यास की अंतिम स्थिति में आपके दोनों पैर पूरी तरह जमीन पर पड़े हुए सामने फैले रहेंगे। हाथों से अंगूठे पकड़े होंगे। नाक और चिबुक घुटनों के पास पैरों को छू रहे होंगे।

आगे झुकते हुए सांस छोड़िए। आसन में १० सेकंड रहते हुए सांस रोके रहिए। ऊपर उठते हुए सांस लीजिए।

लाभ—कमर, नितम्ब, रीढ़ की हड्डी, कंधों की पेशियां, सुषुम्ना आदि सभी पर तनाव पड़ने के कारण ये सभी पुष्ट एवम् सशक्त होते हैं। उदर के अवयव दुरुस्त होते हैं। पाचनसंस्थान सक्रिय होता है। जिगर, किडनी, तिल्ली की कार्यशीलता बढ़ती है। मधुमेह, कब्ज, अजीर्ण रोगों में लाभ पहुंचाता है। स्त्रियों के प्रजननांगों को स्वस्थ और पुष्ट करता है। मस्तिष्क के तनाव दूर होते हैं। नपुंसकता में गुणकारी साबित होता है।

सावधानी—साइटिका (गृध्रसी वात) जीर्ण जोड़ों और पीठ के दर्द में यह आसन नहीं करना चाहिए।

अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन

हठयोग प्रदीपिका के अनुसार योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ हठयोग के प्रवर्तक माने जाते हैं। इस आसन का नाम उन्हीं के ऊपर पड़ा है।

चूंकि यह पूर्ण मत्स्येन्द्रासन का आधा होता है, इसे अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन कहते हैं।

जमीन पर बैठ जाइए। बायां पैर सामने की ओर धड़ के साथ समकोण बनाते हुए पूरी तरह फैला दीजिए। दाहिने पैर को बाईं ओर मोड़कर फैली जांघ के ऊपर से उस पार ले जाकर जमीन पर रख दीजिए। बाएं हाथ से बाएं पैर का अंगूठा पकड़ लीजिए। दाहिने हाथ को पीठ के पीछे ले जाकर कमर के बायें भाग पर रखिए।

इसी तरह दाहिना पांव जमीन पर फैलाकर बायां हाथ पीछे ले जाकर इसे किया जा सकता है। बारी बारी से दोनों ओर के आसन करने चाहिए।

लाभ—कमजोर किडनी और मूत्राशय की निर्बल पेशियों के लिए यह आसन अत्यंत गुणकारी माना जाता है। पुरुषों के स्पर्मेटोरिया (अनजाने वीर्य निकल जाना) और स्त्रियों के श्वेतप्रदर (ल्यूकोरिया) रोगों में लाभ पहुंचाता है। कमर और पीठ के दर्द दूर होते हैं। मेरुदंड लचीला बनता है। उदर और पीठ की नाड़ियां सशक्त होती हैं। सारे शरीर की

नाडियों को यह अनुप्राणित करता है।

सिंहासन

वज्रासन मे बैठ जाए। दोनो हाथ दोनो जाघो पर रखें।

जबडो को चौडा खोल दें और जीभ को जहा तक सभव हो ठुड्डी की ग्रोर बाहर तानें।

ग्राखो को भौहो के बीच रखें। छ सेकड इस तरह रहकर जीभ वापस अदर खीच लें।


सिंहासन

लाभ—सास की दुर्गन्ध दूर होती है। स्वरयन्त्र पुष्ट ग्रौर सक्रिय होता है। ग्रावाज मधुर होती है। साइनस, फैरिन्क्स ग्रौर लैरिन्क्स का व्यायाम इसमे काफी होने के कारण साइनाइटिस (नासूर), गले ग्रौर स्वरयन्त्र के प्रदाह दूर करने मे यह काफी लाभदायक होता है। जिनकी इस तरह की शिकायत जीर्ण (पुरानी) हो गई हो, उन्हें इस ग्रासन से ग्रवश्य फायदा होता है।

खेचरी

यह सिंहासन का उल्टा है।

वज्रासन में बैठ जाए। मुह बद रख कर जीभ के ग्रगले भाग से तालु का स्पर्श करें। जिह्वाग्र को ज्यादा-से ज्यादा पीछे मोडने का कोशिश करें।

नियमित रूप मे ग्रभ्यास करते जाने से जीभ तालु के छेद से ऊपर जा सकती है।

लाभ—इससे मस्तिष्क के नाडी-केन्द्रो की गतिशीलता बढती है। इस से तालु रध्र मे उपस्थित ग्रथियो मे रसस्राव ग्रधिक होने के कारण शारी रिक स्वास्थ्य पर सुप्रभाव पडता है। इस मुद्रा मे योगी काफी-काफी समय तक श्वास रोकने मे सफल हो पाते हैं।

ग्रन्य लाभ सिंहासन की तरह ही हैं।

इसे ग्रासन नहीं कहकर मुद्रा कहा जाता है ग्रौर योगशास्त्र योग साधना मे इसे महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं।

जालधरबंध

बंध का अर्थ होता है बांधना। बंधों में शरीर के कुछ हिस्सों को नियंत्रित किया जाता है।

पद्मासन या सुखासन या सिद्धासन में बैठ जाइए। (आप चाहें तो खड़े रहकर भी इसका अभ्यास कर सकते हैं।)

शरीर को ढीला छोड़ दीजिए। आंखें बंद कर लीजिए। हथेलियां घुटनों पर रखिए।

सर को सामने झुकाकर ठुड्डी को छाती पर दबाइए। हाथों पर जोर डालते हुए इसी तरह रहिए।

सर झुकाते समय सांस छोड़िए, बंध के समय सांस रोके रहिए और ३ सेकन्ड इसी तरह रहकर धीरे धीरे सर उठाते हुए सांस लीजिए।

लाभ—यह ग्रंथियों व नाड़ियों को प्रभावित करके उन्हें स्वस्थ बनाता है। चुल्लिका (थायरॉयड) और उपचुल्लिका (पैराथायरायड) की इससे मालिश होने से वे पुष्ट व सक्रिय होती हैं। मानसिक तनाव व दुश्चिंता दूर होती है। ध्यान की तैयारी के लिए इसका विशेष महत्त्व माना जाता है।

मूलबंध

पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ जाइए।

हथेलियों को घुटनों पर रखिए। आंखें बंद रखिए।

शरीर को ढीला छोड़कर जालंधर बंध लगाइए।

सांस अंदर खींचिए। अब मूलाधार क्षेत्र के (गुदासंधि का) स्नायुओं को सिकोड़ने की कोशिश करते हुए उन्हें ऊपर की ओर खींचिए।

छ सेकन्ड इस तरह रखकर सांस छोड़िए और पूर्वस्थिति में आ जाइए।

लाभ—प्रजनन और उत्सर्जन अंगों का इस बंध में व्यायाम होता है। इससे यौनांग और उत्सर्जनांग मजबूत होते हैं। स्तंभन तथा रमणशक्ति बढ़ाने के लिए इसका बड़ा महत्व माना जाता है।

बवासीर दूर करता है। गुदाद्वार की मांसपेशियों को सशक्त करता है। योगी इसे कुंडलिनी जगाने में सबसे अधिक सहायक समझते हैं।

उड्डियानबंध

उड्डियान बंध का अर्थ होता है उड़ने को तत्पर को बांधना।

पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन मे बैठिए।

जलधर बध लगाइए।

सास छोडिए ग्रौर उसे बाहर ही रोक रखिए। अब पेट की मास-पेशियो को अदर की ग्रोर जहा तक सभव हो सकुचित कीजिए। छ सेकड इसी स्थिति मे रहिए।

सकोचन छोडते हुए सास लीजिए।

लाभ—इस बध मे श्वासपटल (डायफ्राम) का ऊपर की ग्रोर खिचाव होने से वह सशक्त होता है। उदर के अगो को मेरुदड तक सकुचित किए जाने के कारण इन अगो पर इसका प्रभाव पडता है और वे सबल बनते हैं तथा पेट की बीमारिया दूर होती हैं।

टिप्पणी— उड्डियानबध के साथ-साथ जालधरबध तो होता ही है, साथ ही मूलबध भी किया जा सकता है। इसे महाबध कहते हैं। बारी बारी से उदर के वाम ग्रौर दक्षिण भाग को सकोचित करने से वाम उड्डियानबध ग्रौर दक्षिण उड्डियानबध बनते हैं। लाभ उड्डियानबध जैसे ही होते हैं।

योगमुद्रा ग्रथवा योगासन

इसे मुद्रा मे गिना जाता है परन्तु वास्तव मे यह एक ग्रासन ही है।

पदमासन मे बैठकर ग्राखें बद कर लीजिए। दोनो हाथो को पीठ के



योगमुद्रासन

पीछे ले जाकर एक से दूसरे हाथ की कलाई पकड लीजिए। ग्रब धड को धीरे धीरे ग्रागे की ग्रोर इस तरह झुकाइए कि जब तक ग्रापकी ठुडडी जमीन को छू ले।

छ सेकड इसी तरह रहकर पूर्वस्थिति मे वापस ग्रा जाइए।

सामने झुकने के पहले सास बाहर फेंककर उसे वही रोके रखिए। उठते हुए सास ग्रदर लीजिए।

लाभ—सीना फैलता है। कधे सशक्त होते हैं। पेट के ग्रवयवो की इससे मालिश होती है। कोष्ठबद्धता दूर होती है। सुषुम्ना नाडी सक्रिय

होती है। मेरुदड लचीला बनता है। बडी भ्रात में सफाई होती है। शरीर ढीला होता है। तनाव दूर होता है। नींद भ्रच्छी भ्राती है।

शवासन

शरीर को शिथिल करने भ्रौर विश्राम देने का यह सवश्रेष्ठ भ्रासन है।

पीठ के बल लेट जाइए। दोनो हाथो को भ्रगल-बगल पड जाने दीजिए। दोनो पावो का एक दूसरे से थोडा-सा (६ इच से एक फुट तक का दूरी मे) भ्रलग रहने दीजिए। भ्राखें वद रखिए। पूरे शरीर को ढीला छोड दीजिए।



शवासन

जरा भी मत हिलिए। सास सामान्य गति से चलने दीजिए। सर को ढीले होकर एक भ्रोर पड जाने दीजिए या छोटा-सा तकिया ले लीजिए।

यह भ्रासन सभी भ्रासनो के भ्रत मे भ्रवश्य करना चाहिए। कम से-कम पाच मिनट स भ्राधा घटा तक किया जा सकता है।

जिस जिस भ्रासन को करने मे थकावट महसूस हो उस-उसके बाद थोडी देर शवासन करते जाना चाहिए। शीर्षासन के बाद तो शवासन भ्रवश्य करना चाहिए।

लाभ—यह शरीर भ्रौर मन को पूण शिथिलता भ्रौर विश्राम देने म बेजोड है। भारत तथा विदेशो के कई बडे बडे हृदयरोग विशेषज्ञ इसका प्रयोग उच्च रक्तचाप भ्रौर कई हृदयरोगो की चिकित्सा के लिए सफलता पूवक कर रहे हैं। भ्राधुनिक भ्रौद्योगिक भ्रौर स्पर्धावादी युग के दावो भ्रौर तनावों को यह भ्रासन सबसे भ्रच्छे ढग पर दूर करता है। कोई भी शमक (ट्रैंकिलाइजर) गोली मन भ्रौर शरीर का तनाव दूर करने में इस भ्रासन का मुकाबला नही कर सकती। प्राय हर प्रकार के मानसिक रोग मे शवासन गुणकारी हो सकता है

भ्रनिद्रा दूर करने मे शवासन बहुत सहायक होता है। भ्रगर भ्राप भ्रनिद्रा के शिकार हो भ्रथवा किसी रात भ्रापको मानसिक उद्वेलनों भ्रथवा तनावों या शारीरिक थकावट के कारण नीद नही भ्रा रही हो तो भ्राप शवासन में लेट जाए।

नी नींद भ्रा जाएगी।

१७

प्राणायाम

सारे आसन करने के बाद प्राणायाम कीजिए।

योग शास्त्र उस वायवीय शक्ति को प्राण कहते हैं जिसे सारे ब्रह्माण्ड मे व्याप्त मानते हैं। यम का अर्थ होता है नियन्त्रण। इस तरह प्राणायाम का अर्थ होता है प्राणवायु का नियन्त्रण।

प्राणायाम के तीन पद होते हैं—पूरक, कुम्भक तथा रेचक। पूरक का अर्थ होता है सास अंदर खीचना, कुम्भक का अर्थ है सास को अदर (या बाहर) रोके रखना। रेचक का अर्थ है सास छोडना।

वैसे तो प्राणायाम के बीसो प्रकार माने जाते हैं लेकिन जनसामान्य के लिए उज्जायी, नाडी शोधन, सूर्यभेदन, भस्त्रिका, भ्रमरी तथा शीतली प्राणायाम काफी हैं। आप इप्सित लाभ के अनुसार ये सारे या इनमे से जो भी चाह चुनकर कर सकते हैं।

उज्जायी प्राणायाम

पद्मासन अथवा सुखासन या सिद्धासन मे बैठ जाइए। पीठ को सीधा रखें। शरीर को ढीला छोड दें। ठुड्डी को छाती पर रख दें। (यह जाल धर बध है।) दोनो हाथो को घुटनो पर पडा रहने दें। आखें बद कर लें। पहले सांस पूरी तरह बाहर फेंकें, फिर धीरे-धीरे अन्दर सास लेते जाए। यह क्रिया दोनो नाको से (नासिका छिद्रों से) होगी। फेफडो को पूरी तरह हवा से भर जाने दें। इस क्रिया को पूरक कहते हैं।

यह हमेशा ध्यान रखें कि पूरक करते हुए पेट फूल नहीं जाया करे।

पूरी तरह वायु से फेफडे भर जाने के बाद एक या दो सेकड तक सांस रोक रखें (इसे कुम्भक कहते हैं) फिर धीरे-धीरे सास बाहर निकलने दें। इसे रेचक कहते हैं।

इस तरह कम-से-कम छ: बार करें।

उज्जायी करते हुए बाह्यकुंभक भी किया जा सकता है।

लाभ—फेफड़ों में ज्यादा आक्सिजन मिलता है। फेफड़े मजबूत होते हैं। डायफ्राम का व्यायाम होता है। रक्त में अधिक आक्सिजन मिलने से सारे शरीर में साफ खून मिलता है।

उज्जायी उच्च रक्तचाप और सरदर्द में काफी लाभ पहुंचाता है। अति उच्च रक्तचाप के मरीज इस प्राणायाम को चित लेटकर कर सकते हैं।

नाडीशोधन प्राणायाम

पद्मासन, सुखासन या सिद्धासन में बैठकर जालंधरबंध लगावें। बाया हाथ बाएं घुटने पर रखें। आंख बंद कर लें। दाहिने हाथ के अंगूठे और मध्यमा तथा अनामिका उंगलियों को नाक के दोनों ओर रखें।

पहले अंगूठे से दाहिना छेद बंद करके बायें छेद से धीरे धीरे सांस लें (पूरक करें।) कुछ सेकंड अंतकुंभक करें। फिर अंगूठे को हटाकर उंगलियों से बाया छेद बंद कर दें और दाहिने छेद से वायु को धीरे धीरे बाहर निकल जाने दें।

इसी तरह बारी-बारी से बाएं और दाहिने छेद से सांस लें और उसके विपरीत छेद से सांस छोड़ें।

कम-से-कम छः बार इस प्राणायाम को करें।

लाभ—कहा जाता है कि सामान्य श्वासक्रिया से नाड़ीशोधन प्राणायाम में प्राणवायु अधिक मिलती है जिससे नाड़ियां शान्त तथा शुद्ध होती हैं। मन में शान्ति तथा स्थिरता आती है।

सावधानी—उच्च रक्तचाप अथवा हृदयरोग के मरीजों को कुम्भक करने की मनाही है। बिना कुम्भक के वे यह प्राणायाम कर सकते हैं। मंद रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति कुम्भक के साथ इसे कर सकते हैं।

सूर्यभेदन प्राणायाम

इसकी सारी विधि और लाभ नाड़ीशोधन प्राणायाम की तरह ही है। अन्तर इतना है कि इसमें जिस नासारंध्र से (नाक के छेद से) सांस खींची जाती है उसी से छोड़ी जाती है। अगर दाहिने से सांस खींचिए तो उसी से छोड़िए, बाएं से खींचिए तो उसी से छोड़िए।

नाड़ीशोधन और सूर्यभेदन बाह्य अथवा अंतकुम्भक के साथ किए जा सकते हैं।

भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका का अर्थ होता है लोहारो के द्वारा प्रयुक्त भट्टी की भाथी या धौंकनी। इसमे पेट को भाथी की तरह अन्दर-बाहर चलाया जाता है।

उज्जायी जसे आसन मे बैठ जाए। दोनो हाथ दानो घुटना पर रख दे। जालधार बध लगावें।

अब सास लेते और छोडते हुए तेजी से पेट को अन्दर-बाहर करें। इस तरह आप बीस बार कर सकते हैं।

लाभ—फेफडे आर डायफ्राम मजबूत हाते हैं। हृदय की मालिश होती है। सारे शरीर मे तेजी से रक्तसचार होकर गर्मी आती है। यकृत, प्लीहा, पाचनग्रथि और उदर की पेशिया सक्रिय और सशक्त हाती हैं। पाचनशक्ति बढती है। मन मे प्रफुल्लता अनुभव होती है।

भ्रमरी प्राणायाम

भ्रमर का अर्थ है भौरा। इसकी विधि उज्जायी की तरह ही है। अन्तर मात्र इतना है कि सास इस तरह धीरे धीरे छाडी जाए कि भौरे के गूजने की तरह मुह बद किए किए मन्द मन्द आवाज निकाली जाए।

ऐसा कम-से कम छ बार करें।

भ्रमरी करने के बाद थोडी देर शवासन कर लें।

लाभ—अनिद्रा दूर करने मे यह प्राणायाम अपना सानी नही रखता।

शीतली प्राणायाम

इस प्राणायाम से शरीर शीतल होता है इसलिए इसे शीतली कहते है।

पदमासन सिद्धासन अथवा सुखासन मे बैठ जाइए। हाथो को घुटनो पर ज्ञानमुद्रा की स्थिति म रखिए। (ज्ञानमुद्रा मे घुटना पर रखे हाथ की उगलिया मे अगूठे आर तर्जनी का एक दूसरे स छुआया जाता है तथा अन्य उगलियो को पूरी तरह फैली रहने दिया जाता है। हर प्राणायाम अमूमन ज्ञानमुद्रा मे ही किया जाता है।)

मुह को खोलकर होठो को गोल (O की तरह) बनाये। जिह्वा के किनारो को अदर की तरफ मोडकर उसे ताजे मुडे हुए पत्ते के आकार के समान बनावें। मुडी हुई जीभ को ओठो को बाहर निकालें। अब सीत्कार (सी सी की ध्वनि के साथ) हवा अदर लेकर फेफडों को भरिए। यह क्रिया ऐसी ही हागी जैसे किसी नली से पानी अदर खींचा जा रहा हो।

पूरी सास लेने के बाद जीभ ग्रदर करके होठ बद कर लें।
मूल बघ के साथ कुछ सेकड ग्रतर्कुम्भक करें।
ग्रत मे उज्जायी की भाति धीरे धीरे सास बाहर निकालें।
ऐसा कम से कम छ सेकड करें।

लाभ—शरीर को शीतल करता है। गर्मी के दिनो मे इस प्राणायाम के द्वारा ठडक की ग्रनुभूति की जा सकती है। हल्के बुखार ग्रौर पित्त बिगडने मे लाभकारी होता है। यकृत ग्रौर प्लीहा को सक्रिय करता है। पाचन शक्ति बढाता है। प्यास बुझाता है।

ज्ञातव्य—प्रश्न हो सकता है कि कुम्भक कितनी देर करना चाहिए। यह ग्रापके ग्रभ्यास पर निर्भर है। ग्रारभ मे एक या दो सेकड से शुरू करके कम-से-कम छ सेकड तक का कुम्भक काफी माना जाता है।

ग्रगर ग्रापको पूर्ण योगी बनना है तो कुम्भक की ग्रवधि ग्रपने ग्रभ्यास ग्रौर शक्ति के ग्रनुसार जितना चाहे बढा सकते हैं।

सारे प्राणायाम कर लेने के बाद थोडी देर के लिए शवासन ग्रवश्य कर लेना चाहिए।

१८

त्राटक

या तो त्राटक योग की वह क्रिया है जिसमे आंखों को सामने किसी बिन्दु पर स्थिर करके काफी काफी देर तक जमाया जाता है। लेकिन हम यहा इस शब्द का व्यवहार आखो के व्यायाम के लिए कर रहे हैं।

आखो की ज्योति और स्नायुओ को स्वस्थ रखने के लिए उनके व्यायाम की भी वैसी ही आवश्यकता है जैसी शरीर के अन्य अगों के स्वास्थ्य के लिए आसन आदि व्यायामो की।

आखो का व्यायाम उन्हें तरह-तरह की गति देकर किया जा सकता है। भरतनाट्यम् के विद्यार्थियो को नेत्र-व्यायाम की सम्पूर्णांगी शिक्षा दी जाती है।

त्राटक के लिए आप ध्यान के किसी भी आसन मे (पद्मासन आदि) आराम से बैठ जाए। अब आप निम्नलिखित व्यायाम बारी-बारी से करें। हर गति कम से-कम बीस बार दें। फिर आखें बद कर चन्द सेकण्ड आखो को विश्राम दें। फिर अगला त्राटक करें।

एक

आखो की पुतलियो को बाईं से दाहिनी ओर—घडी की सुइया की तरह—गोल-गोल घुमाए।

ऐसा बीस बार कीजिए।

फिर उन्हें इसी तरह दाहिनी से बाईं ओर बीस बार घुमाइए।

चद सेकड आखें बद कर लीजिए फिर अगला त्राटक कीजिए।

दो

आखों की दोनों पुतलियों को बाईं से दाहिनी ओर सीधी रेखा मे चलाइए।

ऐसा बीस बार करके उन्ह दाहिनी ओर से बाईं ओर उसी तरह सीधी रेखा मे चलाइए।

तीन

पुतलिया को ऊपर से नीचे सीधी खडी रेखा मे चलाइए।

चार

पुतलिया को ऊपर बाए कोने स तिरछे नीचे दाहिने कोने तक चलाइए। फिर दाहिने कोने से तिरछे बाए कोने तक चलाइए।

पाच

दाहिनी पुतली को नाक की ओर बाइ ओर और बाईं पुतली को उसी तरह दाहिनी ओर चलाइए।

इसी तरह दोना पुतलियो को नाक स विपरीत दिशा म बाहर की ओर गति दीजिए।

छ

आखो के सामने दाहिने (या बाए) हाथ की तजनी उगली को सीधी खडी रखिए। उगली चेहरे स लगभग बारह इच की दूरी पर रहेगी।

अब आप दृष्टि उगली पर जमाइए। फिर फुर्ती स अधिकतर दूरा की चीज पर ले जाइए। फिर उस उतनी ही तेजी स उगली पर लाइए फिर दूरी पर ले जाइए।

हर त्राटक बीस बीस बार कीजिए। छहा समाप्त करके आखें बद करके दो मिनट शवासन म लेट जाइए।

लाभ—त्राटक करने स आखो की ज्योति हमेशा तेज रहेगी स्नायु मजबूत रहेगे, पशिया सशक्त होगी। आखो क रोगो की सभावना कम होगी।

१६

किन रोगो मे कौन-से आसन

अनिद्रा—त्राटक के बाद शवासन।

गठिया—(आथराइटिस) पवनमुक्तासन, त्रिकोणासन, वज्रासन, गोमुखासन ताडासन सुखासन।

दमा—(ऐजमा) ताडासन, सिंहासन, सर्वांगासन मत्स्यासन, योग मुद्रा, उज्जायी प्राणायाम (बैठ और खडे होकर)।

पेट की बीमारियां—(कब्ज, अजीर्ण, वायु अतिसार, डायरिया और डिसेन्ट्री, पेट दर्द, अम्लपित्त आदि)—पवनमुक्तासन, सुप्त वज्रासन त्रिकोणासन, ताडासन, मत्स्यासन, हलासन, मयूरासन भुजगासन, शलभासन, शवासन, योगमुद्रा, प्राणायाम, पश्चिमोत्तानासन उड्डियान और महाबंध।

पीठ और कमर दर्द—पवनमुक्तासन सुप्तवज्रासन, चक्रासन, लोलासन, त्रिकोणासन ताडासन, योगमुद्रा।

पौरुषग्रंथि के रोग जसे प्रोस्टेट वृद्धि—मूलबंध, महाबंध।

बवासीर—भुजगासन, मत्स्यासन, सुप्तवज्रासन।

मधुमेह—(डायबेटीज) ताडासन, भुजगासन, शलभासन पश्चिमो त्तानासन, मत्स्येन्द्रासन, सुप्तवज्रासन, धनुरासन हलासन, सर्वांगासन, योगमुद्रा, गोमुखासन, प्राणायाम शवासन।

मानसिक रोग—(अधिकतर न्यूरासिस और कुछ साइकोसिस) बंध प्राणायाम, ध्यान तथा शवासन।

यौन दुबलता—गोमुखासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन शलभासन, भुजगासन, मूलबंध तथा सामान्य स्वास्थ्य के सभी आसन।

मासिकधर्म की गडबडी—शीर्षासन, भुजगासन धनुरासन मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, सर्वांगासन, हलासन उड्डियानबंध।

मोटापा—भुजगासन, शलभासन, पवनमुक्तासन, धनुरासन पश्चि-

मोत्तानासन, सुप्तवज्रासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन।

रक्तचाप—उच्च—पवनमुक्तासन, शवासन निम्न—प्राणायाम, भस्त्रिका, बंध, सर्वांगासन।

वृक्क—(किडनी या गुरदा के रोग)सुप्तवज्रासन, सिंहासन, त्रिकोण-आसन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, हलासन, गोमुखासन, मयूरासन, उड्डियानबंध, भस्त्रिका प्राणायाम।

वात—देखो गठिया।

सरदर्द—नाड़ीशोधन और भ्रमरी प्राणायाम, शवासन।

साइटिका—(गृध्रसी वात) चक्रासन, भुजंगासन, शलभासन, शवा-सन।

हृदयरोग—उज्जायी प्राणायाम (लेटकर), शवासन।



मार यही सोचकर रह जाते होंगे कि

१ सफल कैसे हों?

२ उन्नति कैसे करें ?

३ धनकुवेर कैसे बनें ?

४ चिन्तामुक्त कैसे हों ?

५ हँसते हँसते कैसे जियें ?

६ जो चाहे सो कैसे पायें ?

७ अपना खर्च कैसे घटाएँ ?

हमारी आपको यही सलाह है—

८ अवसर को पहचानो !

९ अपने आपको पहचानो !

१० आप क्या नहीं कर सकते !

क्या आप जानते हैं ?

इलाज के लिए दवाओ से दाले उत्तम हैं।
प्राकृतिक इलाज के लिए प्रकृति का सहारा लें।
अनाज, दाल, कन्द-मूल और सूखे मेवे प्रकृति
के दिये हुए बहुमूल्य उपहार है। इन्ही का
अदल-बदलकर सेवन करने से आप ससार-भर
के रोग मिटा सकते है। इस दिशा मे वर्षो की
खोज के बाद एकत्र किये गये रहस्यो को
पाने के लिए स्वय पढे और पूरे परिवार-
जनो को पढाएँ।

डा० समरसेन लिखित
सर्वाधिक बिकनेवाली अनमोल पुस्तक
'घरेलू इलाज'

